जैन ज्योतिर्लोक

-रचयित्री-
गणिनीप्रमुख
आर्यिका ज्ञानमती

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं. 2
ISBN-978-93-87891-04-3

जैन ज्योतिर्लोक

दिव्यशक्ति, भारतगौरव, चारित्रचन्द्रिका परमपूज्य गणिनीप्रमुख 105 श्री ज्ञानमती माताजी द्वारा सन् 1969 में शिक्षण शिविर में उपदिष्ट विषयों के आधार पर

– संकलन –

ब्र. मोतीचंद जैन सर्राफ
(शास्त्री, न्यायतीर्थ)
(प्रथम पीठाधीश क्षुल्लक मोतीसागर जी महाराज)

"भगवान श्री ऋषभदेव विश्वशांति वर्ष" के अन्तर्गत गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी (ऋषभगिरि-मांगीतुंगी पर्वत पर निर्मित 108 फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव प्रतिमा निर्माण की प्रेरणास्रोत) के 63वें आर्यिका दीक्षा दिवस-वैशाख कृ. द्वितीया (2 अप्रैल 2018) के शुभ अवसर पर प्रकाशित

-प्रकाशक-
दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.
फोन नं.- (01233) 280184, 280994
E-mail : jambudweeptirth@gmail.com
Website : www.jambudweep.org, www.encyclopediaofjainism.com

तृतीय संस्करण	वीर नि. सं. 2544	मूल्य
1100 प्रतियाँ	वैशाख कृ. द्वितीया, 2 अप्रैल 2018	20/-रु.

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएं भी प्रकाशित होती रहती हैं।

-: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :-
परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

-: मार्गदर्शन :-
प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी
(पीएच.डी. की मानद उपाधि से अलंकृत)

-: निर्देशक एवं सम्पादकः-
कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामीजी

-: प्रबंध सम्पादक :-
बाल ब्र. डॉ. जीवन प्रकाश जैन

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

प्रथम संस्करण-सन् 1969, प्रतियाँ-1100
द्वितीय संस्करण-सन् 1973, प्रतियाँ-1100

कम्पोजिंग – ज्ञानमती नेटवर्क
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

सम्पादकीय

–कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामीजी

ज्योतिर्वासिविमानेषु, संख्यातीता जिनालयाः।
असंख्या मूर्तयस्तत्र, ते ताः कुर्वन्तु मंगलम्।।

ज्योतिर्वासी देवों के विमानों में असंख्यात जिनालय हैं और असंख्यात मूर्तियाँ हैं वे हम सभी का मंगल करें। ऐसी भावना पूज्य माताजी ने इस श्लोक में की है।

जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी, वर्तमान में 1800 पिच्छीधारी साधुओं में सबसे प्राचीन दीक्षित, आगम पर दृढ़ श्रद्धान रखने वाली पूज्य माताजी के कार्यकलापों से आज पूरा देश परिचित है। पूज्य माताजी की लेखनी से लिखे गये 400 ग्रंथ आज सर्वत्र उनके ज्ञान का दिग्दर्शन करा रहे हैं।

पूज्य माताजी की एक विशेषता यह भी रही है कि लोग पढ़-पढ़कर विद्वान बनते हैं लेकिन पूज्य माताजी ने प्रारंभ से ही शिष्यों को पढ़ा-पढ़ाकर अपने ज्ञान को वृद्धिंगत किया है। यह पुस्तक **'जैन ज्योतिर्लोक'** पूज्य माताजी के स्वाध्याय का एवं शिक्षण शिविर का प्रतिफल है।

पूज्य माताजी ने सन् 1969 में जयपुर चातुर्मास के अन्तर्गत 15 दिन के लिए जैन ज्योतिर्लोक पर एक शिक्षण कक्षा चलाई थी, जिसमें सभी शिष्यों को पढ़ाकर नोट्स तैयार कराये थे, उस समय सभी लोगों की भावना थी कि यह विषय पुस्तक रूप में छप जाये, तो सभी लाभान्वित हो सकें। तब ब्र. मोतीचंद ने पूज्य माताजी की प्रेरणा से नोट्स के आधार से पुस्तक तैयार की। यह पुस्तक पूज्य माताजी की ही कृपा प्रसाद का फल है।

इस पुस्तक का प्रथम प्रकाशन वी. नि. सं. 2496 (सन् 1969) दिसम्बर में हुआ। द्वितीय प्रकाशन वी. नि. सं. 2499, 15 फरवरी 1973 में हुआ। उसके बाद अब पुनः 45 वर्ष बाद इस पुस्तक का प्रकाशन हो रहा है। काफी दिनों से इस पुस्तक की मांग आ रही है। इस पुस्तक को पढ़कर आप सभी जैन ज्योतिर्लोक के बारे में अच्छी तरह से जानकारी प्राप्त करें और अन्य लोगों को भी सही जानकारी से अवगत कराएं, यही मंगल भावना है।

आद्य वक्तव्य

–गणिनी आर्यिका ज्ञानमती

''भवनविमानज्योति-र्व्यन्तरलोकविश्वचैत्यानि।
त्रिजगदभिवन्दितानां, वन्दे त्रेधा जिनेन्द्राणाम्।।''

श्री गौतमस्वामी विरचित चैत्यभक्ति में चार प्रकार के देवों– भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिर्वासी एवं वैमानिक देवों के भवनों में एवं विमानों में स्थित जिनमंदिरों में जिनेन्द्र देवों को मन-वचन-कायपूर्वक नमस्कार किया है।

तत्त्वार्थसूत्र ग्रंथ में चतुर्थ अध्याय में आचार्य श्री उमास्वामी ने ज्योतिर्वासी देवों के बारे में लिखा है-**''ज्योतिष्काः सूर्याचन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्च।।12।।''** अर्थात् सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र और तारे ये ज्योतिष्क देवों के भेद हैं। ज्योतिष्क देवों का निवास मध्यलोक के सम धरातल से 790 योजन की ऊँचाई से लेकर 900 योजन की ऊँचाई तक आकाश में है।

ज्योतिष्क देवों के विशेष वर्णन में सूत्र में लिखा है-**'मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके।।13।।'** अर्थात् ज्योतिष्क देवों के विमान मनुष्यलोक में मेरु पर्वत की प्रदक्षिणा देते हुए हमेशा गमन करते रहते हैं। इससे अगले सूत्र में है-**'तत्कृतः कालविभागः।।14।।'** अर्थात् घड़ी, घंटा, दिन, रात आदि व्यवहार काल का विभाग उन्हीं गतिशील ज्योतिष्क देवों के द्वारा किया गया है। **''बहिरवस्थिताः।।15।।''** मनुष्यलोक-अढ़ाईद्वीप से बाहर के ज्योतिष्क देवों के विमान स्थिर हैं। इसलिए ढ़ाईद्वीप के बाहर रात-दिन का भेद नहीं होता है। वहाँ हमेशा दिन ही रहता है। जैसे नंदीश्वर द्वीप आठवां द्वीप है वहाँ पर हमेशा प्रकाश रहता है क्योंकि वहाँ ज्योतिर्वासी देव के विमान स्थिर हैं गमन नहीं करते हैं।

ऐसा ही वर्णन **तिलोयपण्णत्ति, त्रिलोकसार, लोकविभाग** एवं **जम्बूद्वीपपण्णत्ति** आदि करणानुयोग के ग्रंथों में प्राप्त होता है। इस मध्यलोक में ही चित्रा पृथ्वी से 790 योजन की ऊँचाई पर आकाश में अधर तारा, नक्षत्र, सूर्य आदि ज्योतिष देवों के विमान है। सर्वप्रथम 790 योजन पर ताराओं के विमान हैं पुनः ऊपर-ऊपर 900 योजन तक ये सभी विमान रहते हैं। ये सभी विमान जम्बूद्वीप से लेकर अंतिम स्वयंभूरमण समुद्र तक होने से असंख्यात हैं। प्रत्येक विमान में ज्योतिर्वासी देवों के महल बने हुए हैं, उन सबमें जिनमंदिर हैं अतः ज्योतिष देवों के भी असंख्यात जिनमंदिर हैं और सभी जिनमंदिरों में 108-108 जिनप्रतिमाएं विराजमान हैं। इन सभी जिनप्रतिमाओं को मेरा बारम्बार नमन।

यह जैन ज्योतिर्लोक पुस्तक महान ग्रंथों का सार रूप संकलन है। इसे पढ़कर सच्चे देव, शास्त्र, गुरु पर श्रद्धा करते हुए उनकी वाणी पर निःशंक विश्वास करके सम्यग्दृष्टि बनकर स्वर्ग-मोक्षसुख को प्राप्त करें, यही मंगल भावना है।

जैन ज्योतिर्लोक पुस्तक के संदर्भ में.....

–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

ज्योतिष देव विमान के, जिनगृह संख्यातीत।
नमूँ नमूँ कर जोड़ के, बनूँ स्वात्म के मीत।।

जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी भारतगौरव चारित्रचन्द्रिका दिव्यशक्ति गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी का परम उपकार है, जिन्होंने प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग का तलस्पर्शी ज्ञान प्राप्त करके उस ज्ञान को सभी के लिए 400 ग्रंथों के रूप में वितरित किया है।

पूज्य माताजी ने करणानुयोग के सभी ग्रंथों का अनेक बार स्वाध्याय करके जैन ज्योतिर्लोक के ऊपर अनेक प्रकार प्रशिक्षण शिविर लगाया। अभी मुम्बई में भायंदर (वेस्ट) में **'जैन ज्योतिर्लोक प्रशिक्षण शिविर'** में पूज्य माताजी ने स्वयं अपने मुखारविंद से सभी को जैन ज्योतिर्लोक के बारे में बताया। सूर्य, चन्द्रमा, तारे कहाँ हैं ? पृथ्वी से कितनी ऊँचाई पर हैं ? सूर्य, चन्द्रमा आदि के विमानों का प्रमाण क्या है ? इनकी किरणों का प्रमाण क्या है ? शीत और ऊष्ण किरणों का कारण क्या है ? इन देवों की आयु का प्रमाण क्या है ? दिन रात्रि के विभाग का क्रम कैसे है ? एक मिनट में सूर्य का गमन कितना है ? चन्द्र ग्रहण, सूर्य ग्रहण कैसे पड़ता है ? आदि जैन ज्योतिर्लोक के बारे में अत्यन्त सरलरूप में समझाया।

भू भ्रमण का खण्डन करते हुए इसमें बताया गया है कि पृथ्वी स्थिर है सूर्य, चन्द्रमा, तारें आदि ही मेरु की प्रदक्षिणा करते हुए घूमते हैं। अगर पृथ्वी घूमने लगेगी, तो हम आप एक स्थान पर रह ही नहीं सकते। हम सभी भी पृथ्वी के साथ घूमने लगेंगे।

पूज्य माताजी ने जैन ज्योतिर्लोक के ऊपर ही **''ज्योतिर्लोक जिनालय विधान''** की रचना की है। जिसे कि अनेक बार पूज्य माताजी के सान्निध्य में मुम्बई में भी किया है। इस विधान को करने से ज्योतिष्क देवों के विमानों में स्थित असंख्यात जिनमंदिरों की आराधना हो जाती है।

अभी मुम्बई में भक्तों ने पूज्य माताजी को प्लेनोटोरियम दिखाया। जिसमें सूर्य, चन्द्रमा, तारे दिखाये गये। लेकिन कहीं पर भी उनके विमानों का, जिनमंदिरों का वर्णन नहीं आता। जैन ज्योतिर्लोक के ज्ञान से हम सभी अच्छी तरह परिचित

हो और ऐसा विश्वास करें कि आज हमें जो भी सूर्य, चन्द्रमा, तारे आदि दिख रहे हैं, वे सभी उन देवों के विमान हैं और उन विमानों में बीचों-बीच में जिनमंदिर हैं एवं मंदिर के अगल-बगल में देवों के भवन हैं। पूज्य मातजाी ने हस्तिनापुर में तीन लोक रचना में ज्योतिर्वासी देवों के विमानों को दर्शाया है। आप सभी वहाँ जाकर दर्शन करके सम्यक् ज्ञान प्राप्त करें।

पूज्य माताजी ने करणानुयोग को अपने जीवन में आत्मसात करके हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप, तेरहद्वीप एवं तीनलोक की रचना बनवाकर सभी को जैन भूगोल एवं खगोल से अच्छी तरह परिचित कराया है। पूज्य माताजी दीर्घायु हों, स्वस्थ रहें, यही जिनेन्द्रदेव से मंगल प्रार्थना है।

प्राक्कथन

न सम्यक्त्व समं किंचित्, त्रैकाल्ये त्रिजगत्यपि
श्रेयोऽश्रेयश्च मिथ्यात्व—समं नान्यत् तनूभृतां।

तीनों लोक में और तीनों कालों में इस संसारी प्राणी को सम्यक्त्व के समान हितकारी (कल्याणकारी) कोई भी वस्तु नहीं है और मिथ्यात्व के सदृश अकल्याणकारी कोई भी पदार्थ नहीं है। तात्पर्य यह है कि सम्यक्त्व रहित अवस्था के कारण ही यह जीव अनादिकाल से संसार में परिभ्रमण कर रहा है। सम्यक्त्व रूपी रत्न मिल जाने के बाद इस जीव का संसार सीमित (अर्द्ध पुद्गल परावर्तन मात्र) रह जाता है।

सम्यक्त्व के होने पर जीव में 4 गुण प्रगट होते हैं—1. प्रशम, 2. संवेग, 3. अनुकम्पा, 4. आस्तिक्य। कषायों की मंदता को प्रशम भाव कहते हैं। संसार, शरीर एवं भोगों से विरक्त होना संवेग है। प्राणीमात्र के हित की भावना अनुकम्पा है। जिनेन्द्र भगवान द्वारा कथित जिनधर्म, जिनवाणी में निःशंक होकर श्रद्धान रखना आस्तिक्य है। जैसे—जिनेश्वर ने स्वर्ग, नरक, सुमेरू आदि का वर्णन किया है। हम इन स्थानों को वर्तमान में प्रत्यक्ष नहीं देख सकते किन्तु फिर भी आस्तिक्य भावों से उनकी वाणी पर अटूट श्रद्धा होने से दिव्यध्वनि प्रणीत पदार्थों का अस्तित्व स्वीकार करते हैं। क्योंकि जिनेन्द्र भगवान ने घातिया कर्मों के अभाव से प्रगट केवलज्ञान के द्वारा तीनों लोकों का स्वरूप बतलाया है। दृष्टि एवं तर्क के अगोचर होते हुए भी भगवान की वाणी पर श्रद्धा रखना इसी का नाम सम्यक्त्व है।

आज चन्द्रलोक की यात्रा के विषय में थोड़ा विचार करके देखा जाये तो हमारे बहुत से जैन बन्धुओं की क्या स्थिति हो रही है। अमरीकी चन्द्रमा पर उतर गये एवं वहाँ की मिट्टी ले आये हैं। यह सब अमेरिका के लोगों ने टेलीविजन पर प्रत्यक्ष देखा है। आगे और भी उनके विशेष प्रयास जारी हैं। कई प्रकार की वैज्ञानिक कल्पनाएँ छापी जा रही हैं। यह भी सूचित किया गया है कि वहाँ आम जनता के लोग भी (लाखों रुपये का) टिकट लेकर जा सकेंगे।

प्रिय बन्धुओं! न तो सभी लोगों ने टेलीविजन से उन्हें इसी चन्द्र पर उतरते हुए देखा है और न वहाँ की मिट्टी ही सब लोगों को मिली है और न ही सभी लाखों

का टिकट लेकर वहाँ जा सकते हैं। मात्र आगम और पूर्वाचार्यों के प्रति तरह-तरह की अश्रद्धा एवं आशंका उत्पन्न कर-करके अत्यन्त दुर्लभता से प्राप्त हुए सम्यक्त्व रूपी रत्न को भी व्यर्थ में गवां रहे हैं।

इस प्रकार 'इतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्टः' वाली उक्ति को चरितार्थ कर रहे हैं। अतः इतने मात्र से ही अपनी श्रद्धा को न बिगाड़ें। अभी तो आगे इस सम्बन्ध में और भी खोजें होती रहेंगी।

अभी तो यह सोचने की बात है कि जब यहाँ (पृथ्वी) से 31,60,000 मील की ऊँचाई पर सबसे पहले ताराओं के विमान हैं, 32,00,000 मील ऊपर सूर्य के विमान हैं तथा इन सबसे ऊपर अर्थात् 35,20,000 मील ऊँचे चन्द्रमा के विमान हैं जबकि अमेरिका द्वारा छोड़ा गया राकेट अलोपो-11 तो मात्र 2,40,000 मील ही गया है तथा चन्द्र विमानों के गमन की गति इतनी तेज (1 मिनट में $4,22,777\frac{31}{1747}$ मील) है कि उस पर पहुँच पाना ही हम लोगों के लिए अति दुर्लभ है।

इस तरह इन सबको देखते हुए तो ऐसा अनुमान होता है कि वे लोग विजयार्ध पर्वत की श्रेणियों पर तो कहीं नहीं उतरे हैं और वहीं से मिट्टी लाये हैं।

चन्द्रमा का विमान 3672 मील का है। वहाँ पर देवों के ही आवास हैं। वहाँ की सर्वत्र रचना रत्नमयी है। वहाँ पर मिट्टी, कंकड़, पत्थर का क्या काम है ?

टेलीविजन पर चन्द्रमा पूर्णिमा या अमावस्या के दिन मध्याह्न काल में यदि देखकर बता सकें तो माना जा सकता है कि चन्द्रमा पर पहुँचे, नहीं तो सब बातें निरर्थक व भ्रमोत्पादक हैं।

अमेरिकन समाचारों के अनुसार द्वितीय आषाढ़ के शुक्ल पक्ष की सप्तमी को (भारतीय समयानुसार) रात्रि के 1.30 बजे पर चन्द्र धरातल पर उतरे। इसका मतलब यह हुआ कि उस समय चन्द्रमा राहु के ध्वजदण्ड से 8 कला आच्छादित था तथा तुला राशि में प्रविष्ट था एवं चित्रानक्षत्र था। अर्थात् चन्द्र उस समय अस्त हो चुका था। यदि चन्द्रमा अस्त होने पर भी टेलीविजन पर देख सकें तो बतलाएँ। हम यह निश्चयपूर्वक कहते हैं कि अस्त हुआ चन्द्रमा कभी दिखाई नहीं देगा। इसके विपरीत वैज्ञानिकों ने तो राकेट को चन्द्रमा पर उतरते हुए देखा। परन्तु जब चन्द्रमा ही नहीं दिखाई दे सकता तो राकेट-मानव को चन्द्रमा के धरातल पर उतरते देखा यह कथन सर्वथा असत्य एवं भ्रामक है।

समाचार पत्रों में एक बात और यह पढ़ने में आई कि प्रयोग से जाना गया है कि चन्द्रमा की चट्टानें दो अरब से साढ़े चार अरब वर्ष पुरानी हैं यह मत अमेरिका के न्यूयार्क विश्वविद्यालय के चार बड़े वैज्ञानिकों का है। परन्तु बारीकी से अन्वेषण करने पर हजारों या दो चार लाख वर्ष पुरानी हो सकती हैं। लेकिन यह कहना कि वे 4.50 अरब वर्ष पुरानी हैं इस प्रकार के निर्णय में क्या प्रमाण है ? इस तरह अनुमान से ही वैज्ञानिक लोग बहुत सी बातों को वास्तविक रूप में प्रगट कर देते हैं।

एक बार नवभारत टाइम्स के समाचार पढ़ने में आये कि एक पुराना हाथी दाँत मिला है जो कि 50 लाख वर्ष पुराना है। जबकि यह हजारों वर्ष पुराना भी हो सकता है ऐसे कितने ही वैज्ञानिकों के अनुमान असत्य की श्रेणी में गर्भित हो जाते हैं।

प्राचीन पाश्चात्य विद्वान पृथ्वी को केवल 84 हजार वर्ग मील या उससे कुछ अधिक मानते थे लेकिन उसकी खोज होने पर अब वह प्रमाण असत्य हो गया। पहले अमेरिका आदि का सद्भाव नहीं था। पृथ्वी को उतनी ही मानते थे। अब धीरे-धीरे नई खोज से नये देश मिले जिससे पृथ्वी बढ़ गई। पाश्चात्य भू-वेत्ता पृथ्वी को नारंगी के आकार में गोल एवं घूमती हुई मानते थे, परन्तु इसके विपरीत अमेरिका के एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक विद्वान् ने पूर्व मत का खण्डन करते हुए लिखा था कि पृथ्वी नारंगी के समान गोल नहीं है और सूर्य-चन्द्र स्थिर नहीं हैं वे चलते-फिरते रहते हैं। इस प्रकार का एक लेख लगभग 25-30 वर्ष पहले समाचार पत्रों में प्रकाशित हो चुका है।

जैन सिद्धान्त ने ऐसी खोजों पर प्रकाश इसलिए नहीं डाला कि महर्षियों ने तो मुख्य रूप से मोक्ष प्राप्ति के साधन एवं आत्मा के विकास पर ही प्रकाश डाला है। ये सारे वर्तमान के वैज्ञानिक भौतिकवादी खोजपूर्ण साधन यहीं पड़े रह जावेंगे। इस वैज्ञानिक ज्ञान से आत्मा को सद्गति मिलने वाली नहीं है। वैसे सर्वज्ञ कथित वाणी से प्ररूपित इन जड़ पदार्थों का अवधिज्ञानी आदि ऋषियों ने एवं श्रुतकेवलियों ने द्वादशांग श्रुतज्ञान से जानकर स्वरूप निरूपण अवश्य किया है।

वर्तमान में मानव भोग विलासों में समय को व्यर्थ गवां रहे हैं। धार्मिक अध्ययन से शून्य होने के कारण ही आज वास्तविकता से अनभिज्ञ हो रहे हैं। यही कारण है कि 'चन्द्र यात्रा' के बारे में तरह-तरह की चर्चायें हो रही हैं। जबकि हमारे

जैनाचार्यों ने लोकविभाग, त्रिलोकसार, तिलोयपण्णत्ति आदि महान् ग्रन्थों में तीनों लोकों की सारी रचना तथा व्यवस्था के बारे में पूर्णतया बारीकी से स्पष्टीकरण किया है। लेकिन इस आर्थिक एवं भौतिक युग में किसी को इतना अवसर ही नहीं मिलता दिखाई देता जबकि वे अपनी निधि को देख सकें। आज हम लोग दूसरों की खोज पर मुँह ताकते रहते हैं।

इसी बात को ध्यान में रखकर जन साधारण के हितार्थ सौर्यमण्डल के बारे में जैन आम्नायानुसार इसका ज्ञान कराने के लिए पूज्य विदुषी गणिनीप्रमुख आर्यिका 105 श्री ज्ञानमती माताजी ने लोगों के आग्रह पर सन् 1969 के जयपुर चातुर्मास के अन्तर्गत 15 दिन के लिए एक शिक्षण कक्षा चलाई थी, जिसमें स्त्री-पुरुषों तथा बालकों ने बहुत ही रुचिपूर्वक भाग लेकर अध्ययन करके नोट्स भी उतारे थे। तभी से बहुतों की यह इच्छा रही कि यदि यह विषय पुस्तक के रूप में छपकर तैयार हो जावे तो आबाल-गोपाल इससे लाभान्वित हो सकेंगे। जैन भौगोलिक तत्त्वों को सरलतापूर्वक समझ सकेंगे।

पूज्य माताजी ने अस्वस्थ अवस्था होते हुए भी अथक परिश्रम करके, अमूल्य समय देकर जो नोट्स लिखवाये थे उसी के आधार पर बहुत से ग्रन्थों के साररूप यह छोटी सी पुस्तक तैयार की गई है। अतः हम माताजी के अत्यन्त आभारी हैं।

विशेष—पूज्य माताजी कई स्थानों पर उपदेश के अन्तर्गत अकृत्रिम चैत्यालयों की रचना को लेकर त्रिलोक रचना में जैन भूगोल के आधार पर मध्य लोक में पृथ्वी कितनी बड़ी है ? छह खण्ड की रचना कैसी है ? उसमें आर्यखण्ड कितना बड़ा है ? उसकी व्यवस्था कैसी क्या है ? सुमेरू पर्वत आदि कहाँ किस रूप में हैं ? इत्यादि विषय पर बहुत ही रोचक ढंग से प्रकाश डालती रहती हैं।

जब आप अपने संघ सहित सोलापुर चातुर्मास के उपरान्त यात्रा करती हुई श्रीसिद्धक्षेत्र सिद्धवरकूट दर्शनार्थ पधारीं, तब सनावद निवासियों के आग्रह पर सन् 1967 का चातुर्मास वहीं स्थापित किया। तब वहाँ पर भी उपदेश के अन्तर्गत बहुत सुन्दर ढंग से अकृत्रिम चैत्यालयों की परोक्ष वंदना कराते हुए उपरोक्त जैन भूगोल पर विस्तृत प्रकाश डाला था।

तभी से हमारी यह भावना थी कि यदि सुन्दर बाग-बगीचों एवं द्वीप-समुद्रों सहित खुले मैदान में जैन मतानुसार तद्रूप भौगोलिक रचना दर्शाई जाये तो समस्त जैनाजैन जनता को जम्बूद्वीप, सुमेरू पर्वत आदि की रचना साकार रूप

में होने से समझना सरल हो जावे। ऐसी रचना अपने प्रकार की एक अद्वितीय एवं दर्शनीय स्थल के रूप में देश-विदेश के लोगों के आकर्षण का केन्द्र होगी।

परम सौभाग्य की बात है कि उक्त रचनात्मक कार्य को क्रियान्वित करने हेतु विदुषी रत्न पूज्य आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी की पुनीत प्रेरणाओं से दिल्ली में 'दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान' की मंगल स्थापना की गई है।

संस्थान के उद्देश्यों के अन्तर्गत प्रमुखरूप से भगवान महावीर स्वामी के 2500वें निर्वाण महोत्सव की स्मृति को चिरस्थायी बनाने के लिए स्मारकरूप में जैन भूगोल के अन्तर्गत जम्बूद्वीप की वृहत् रचना का कार्य प्रारम्भ हो गया है।

इस पुस्तक को पढ़कर जैन ज्योतिर्लोक को समझें। विशेष समझने के लिए लोकविभाग इत्यादि ग्रन्थों का स्वाध्याय करें एवं अपने सम्यक्त्व को दृढ़ बनावें। यही मेरी शुभ कामना है।

-मोतीचन्द अमोलकचन्दसा जैन सर्राफ*
शास्त्री, न्यायतीर्थ—सनावद (मध्यप्रदेश)
बसंत पंचमी, सन् 1973

* समाधिस्थ पीठाधीश क्षुल्लक श्री मोतीसागर जी महाराज

प्रस्तावना

विशालग्रहलोकस्य भूलोकस्य तथैव च।
नित्यानां जिनधाम्नां च वर्णनं कृतमत्र सत्।।
माता ज्ञानवती श्लाघ्या माता जिनमतिस्तथा।
उभयोर्पुण्यकर्मेदं धन्यवादोचितं सदा।।

प्रस्तुत पुस्तिका अपने नाम से ही अर्थ की सार्थकता दिखलाती हुई दृष्टिगत होती है। **'जैन ज्योतिर्लोक'** नाम से इसका नामकरण किया गया है किन्तु इसमें न केवल ज्योतिर्लोक का ही वर्णन है अपितु मध्यलोक के द्वीप, समुद्रों, नदी, पहाड़ों एवं क्षेत्र विभागों का भी वर्णन है और ये ही नहीं इसमें उन अकृत्रिम चैत्यालयों का भी वर्णन है जो कि मध्यलोक में 458 की संख्या में सदा शाश्वत विद्यमान हैं।

आधुनिक युग में चन्द्रलोक यात्रा का डिंडिम घोष चतुर्दिक सुनाई पड़ता है। वैज्ञानिकों ने वहाँ जाकर वहाँ के वायुमण्डल का, वहाँ की मिट्टी का और वहाँ पर होने वाली जलवायु का भी अध्ययन किया है। यह भी निश्चित हो चुका है कि चन्द्रलोक में मानव का जाना संभव है और कतिपय सामग्री के सद्भाव में मानव वहाँ जीवित भी रह सकता है।

किन्तु जैनाचार्यों ने इस धारणा को सही रूप नहीं दिया है। उनका कहना है कि चाहे आधुनिक वैज्ञानिक अपनी चन्द्रलोक यात्रा सफल समझ लें किन्तु अभी वे असली चन्द्रमा पर नहीं पहुँच पाये हैं। आकाश में अनेकों ग्रह, नक्षत्र ही नहीं इसी प्रकार के अन्य भ्रमणशील पुद्गल स्कंध भी शास्त्रों में बतलाये गये हैं। हो सकता है कि आधुनिक वैज्ञानिक भी ऐसे ही किसी पुद्गल स्कंध पर पहुँच गये हों। जैनवाङ्मय के अनुसार उनका चन्द्रमा तक पहुँचना संभव नहीं है।

इसी बात को दिखाने के लिये इस **'जैन ज्योतिर्लोक'** नाम की पुस्तक का सृजन किया गया है। सौरमण्डल में कितने ग्रह, नक्षत्र, सूर्य, चन्द्र और तारे हैं, उनकी संख्या, ऊँचाई व विस्तार आधुनिक माप के माध्यम से दी हैं पाठक उसको जानकर अपना भ्रम मिटा सकते हैं।

जिन भगवान सर्वज्ञ होते हैं अन्यथावादी नहीं होते, अतः उनके द्वारा कथित

तत्त्व भी अन्यथा नहीं हो सकते और यह बात सत्य भी है कि जो-जो वीतरागी सर्वज्ञ ओर हितोपदेशी होते हैं वे ऐसे ही होते हैं।

इस पुस्तक में अपना कुछ न लिखकर पूर्वाचार्यों का ही सहारा लिया गया है। त्रिलोकसार, तिलोयपण्णत्ति, लोकविभाग, राजवार्तिक, श्लोकवार्तिक आदि ग्रन्थ ही इस पुस्तक की आधारशिला हैं।

जिनागम में श्रद्धा रखने वाले भव्य पुरुष अपने उपयोग की स्थिरता करने वाली और संस्थानविचय धर्मध्यान में कार्यकारी होने वाली इस पुस्तक को रुचि से पढ़ेंगे ओर अन्य पाठकों को भी धर्म लाभ लेने में सहयोग प्रदान करेंगे।

इस पुस्तक में विशेषतः तीन विषय रखे गये हैं—

1. ज्योतिर्लोक, 2. भू-लोक और 3. अकृत्रिम चैत्यालय।

1. ज्योतिर्लोक—इसमें पृथ्वी तल से 790 योजन से लेकर 900 योजन तक की ऊँचाई अर्थात् 110 योजन में स्थित ज्योतिषी देवों के विमानों को बतलाया है। इन विमानों से सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र और तारे अपने परिवारों के ध्रुवों को छोड़कर अढ़ाई द्वीप में तो सुमेरू पर्वत के चारों ओर परिभ्रमण करते हुए दिखाये गये हैं और इसके बाहर वाले अवस्थित दिखाये गये हैं। पुस्तक में इन्हीं विमानों की स्थिति, ऊँचाई और विस्तार का ठीक प्रमाण ग्रन्थान्तरों से देख शोध कर सही लिखा है। सूर्य और चन्द्र विमानों में जिनचैत्यालयों का स्वरूप भी यथावत् संक्षिप्त रूप से बताया गया है। किस देव की कितनी स्थिति है इसे भी पुस्तक में खोला गया है और किस-किस प्रकार उनका भ्रमण है उस पर भी पूर्ण प्रकाश डाला गया है। सूर्य एवं चन्द्रमा जिन 184 वीथियों में होकर गमन करते हैं उनका प्रमाण शास्त्रोक्त विधि से सही निकाल कर लिखा गया है। जम्बूद्वीप में होने वाले दो सूर्य और दो चन्द्रमा किस प्रकार सुमेरू के चारों ओर परिभ्रमण करते हैं, उनकी गतियों का माप आधुनिक मान्य माप के आधार पर सही निकाला गया है। रात-दिन का होना, उनका बड़ा-छोटा होना, ऋतुओं का होना, ग्रहण का होना, सूर्य के उत्तरायण व दक्षिणायन का होना, इत्यादि सभी खगोल सम्बन्धी तत्त्वों का संक्षिप्त दिग्दर्शन कराया है।

2. भू-लोक—इस पुस्तक में जम्बूद्वीप आदि द्वीपों और लवण समुद्रादि समुद्रों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। इनमें तेरहद्वीप तक के द्वीपों और समुद्रों

पर ही विशेष प्रकाश डाला है क्योंकि इन्हीं तेरहद्वीप तक अकृत्रिम चैत्यालय पाये जाते हैं। अढ़ाई द्वीप के द्वीप और समुद्रों का विशेष विवरण दिया गया है। कितनी भोगभूमियाँ और कितनी कर्मभूमियाँ अढ़ाई द्वीप में हैं उनका संक्षिप्त विवरण और इन क्षेत्रों में होने वाली गंगादिक नदियों का और इनके परिणाम आदि का वर्णन भी पुस्तक में भली प्रकार किया है।

3. अकृत्रिम चैत्यालय—पुस्तक में अकृत्रिम चैत्यालयों का स्वरूप भी दिखलाया है। जम्बूद्वीप में 78 और मध्यलोक में 458 अकृत्रिम चैत्यालय कहाँ-कहाँ हैं, इनको पृथक्-पृथक् बतलाकर चैत्यालयों तथा प्रतिमाओं का स्वरूप भी संक्षिप्त रूप से समझाया गया है।

इस प्रकार पुस्तक को आद्योपान्त देखने से पता चलता है कि हमें जिनेन्द्र देव के वचनों पर विश्वास करके आगम प्रमाण को विशेष महत्त्व देना चाहिये क्योंकि इस युग में प्रत्यक्ष दृष्टा सर्वज्ञ का तो अभाव है अतः उनके अभाव में उनकी वाणी को ही प्रमाण मानकर उसमें आस्था रखनी चाहिये।

इन शब्दों के साथ में पूज्य ज्ञानमती माताजी के प्रति विशेष श्रद्धा रखता हुआ इस पुस्तक की प्रस्तावना लिखकर मैं अपना अहोभाग्य समझता हूँ।

-गुलाबचंद छाबड़ा—जैनदर्शनाचार्य
अध्यक्ष—श्री दिगम्बर जैन संस्कृत कालेज, जयपुर

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि

श्री ज्ञानमती माताजी का संक्षिप्त-परिचय

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

जन्मस्थान– टिकैतनगर (बाराबंकी) उ.प्र.

जन्मतिथि– आसोज सुदी 15 (शरदपूर्णिमा) वि. सं. 1991, (22 अक्टूबर सन् 1934)

जाति– अग्रवाल दि. जैन, **गोत्र–** गोयल, **नाम–** कु. मैना

माता-पिता– श्रीमती मोहिनी देवी एवं श्री छोटेलाल जैन

आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत– ई. सन् 1952, बाराबंकी में शरदपूर्णिमा के दिन

क्षुल्लिका दीक्षा– चैत्र कृ. 1, ई. सन् 1953 को महावीरजी अतिशय क्षेत्र (राज.) में आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज से। नाम-क्षुल्लिका वीरमती

आर्यिका दीक्षा– वैशाख कृ. 2, ई. सन् 1956 को माधोराजपुरा (राज.) में चारित्रचक्रवर्ती 108 आचार्य श्री शांतिसागर जी की परम्परा के प्रथम पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के करकमलों से।

साहित्यिक कृतित्व– अष्टसहस्री, समयसार, नियमसार, मूलाचार, कातंत्र-व्याकरण, षट्खण्डागम आदि ग्रंथों के अनुवाद/टीकाएं एवं लगभग 400 ग्रंथों की लेखिका।

डी.लिट्. की मानद उपाधि– सन् 1995 में अवध वि.वि. (फैजाबाद) द्वारा एवं तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय मुरादाबाद द्वारा 8 अप्रैल 2012 को ''डी.लिट्.'' की मानद उपाधि से विभूषित।

तीर्थ निर्माण प्रेरणा– हस्तिनापुर में जंबूद्वीप, तेरहद्वीप, तीनलोक आदि रचनाओं के निर्माण, शाश्वत तीर्थ अयोध्या का विकास एवं जीर्णोद्धार, प्रयाग-इलाहाबाद (उ.प्र.) में तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ का निर्माण, तीर्थंकर जन्मभूमियों का विकास यथा-भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा-बिहार) में 'नंद्यावर्त महल' नामक तीर्थ निर्माण, भगवान पुष्पदंतनाथ की जन्मभूमि काकन्दी तीर्थ (निकट गोरखपुर-उ.प्र.) का विकास, भगवान पार्श्वनाथ केवलज्ञानभूमि अहिच्छत्र तीर्थ पर तीस चौबीसी मंदिर, हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप स्थल पर भगवान शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ की 31-31 फुट उत्तुंग खड्गासन प्रतिमा, मांगीतुंगी में निर्मित 108 फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव की विशाल प्रतिमा, महावीर जी तीर्थ पर महावीर धाम में पंचबालयति मंदिर, शिर्डी में ज्ञानतीर्थ, सम्मेदशिखर में आचार्य श्री शांतिसागर धाम इत्यादि।

महोत्सव प्रेरणा– पंचवर्षीय जम्बूद्वीप महामहोत्सव, भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव, अयोध्या में भगवान ऋषभदेव महाकुंभ मस्तकाभिषेक, कुण्डलपुर महोत्सव, भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव, दिल्ली में कल्पद्रुम महामण्डल विधान का ऐतिहासिक आयोजन इत्यादि। विशेषरूप से 21 दिसम्बर 2008 को जम्बूद्वीप स्थल पर विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन का आयोजन हुआ, जिसका उद्घाटन भारत की तत्कालीन राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटील द्वारा किया गया।

शैक्षणिक प्रेरणा– 'जैन गणित और त्रिलोक विज्ञान' पर अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी, राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन, इतिहासकार सम्मेलन, न्यायाधीश सम्मेलन एवं अन्य अनेक राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर के सेमिनार, ऑनलाइन जैन इनसाइक्लोपीडिया आदि।

रथ प्रवर्तन प्रेरणा– जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति (1982 से 1985), समवसरण श्रीविहार (1998 से 2002), महावीर ज्योति (2003-2004) आचार्य श्री सम्मेदशिखर ज्योति रथ (2014) भगवान ऋषभदेव विश्वशांति कलश यात्रा रथ मांगीतुंगी (2015) के दो रथों का भारत भ्रमण।

इस प्रकार नित्य नूतन भावनाओं की जननी पूज्य माताजी चिरकाल तक इस वसुधा को सुशोभित करती रहें, यही मंगल कामना है।

हार्दिक उद्गार

–आर्यिका सुव्रतमती (संघस्थ)

प्रतिभाशाली विदुषी माता दिव्य व्यक्तित्व तुम्हारा है।
चतुर्मुखी प्रतिभा की धारी, भारत भूषण नाम प्यारा है।।
जैन भूगोल की हो तुम विदुषी, सरस्वती की प्रतिमूर्ति।
श्रेष्ठ धर्म प्रभावक साध्वी, प्रज्ञा और पुरुषार्थ की मूर्ति।।1।।

विद्वानों की हो जननी, जिनवाणी की आराधिका हो।
ओजस्वी वाणी की स्वामिनी, भ्रमण करती ज्ञानशाला हो।।
वात्सल्यमूर्ति माँ श्रुतज्ञानी, ज्ञान ज्योति की अमर देन हो।
बीसवीं सदी की प्रथम बालब्रह्मचारिणी से विभूति हो।।2।।

अलौकिक कार्यों की प्रणेत्री, जिनशासन की सेविका हो।
श्रमण संस्कृति की उन्नयनकर्त्री, संकल्प शक्ति की साधिका हो।।
पृथ्वी सम सहनशील माँ, जादुई व्यक्तित्व तुम्हारा है।
श्रावकों की सन्मार्गदर्शिका, दर्शन ज्ञान चारित्र को धारा है।।3।।

संयम की अनमोल शिक्षिका, जैन वाङ्मय की सृजिका हो।
शास्त्रों की महानतम ज्ञाता, आर्ष परम्परा की प्रचारिका हो।।
नारी जाति का गौरव माता, कुशल आर्कीटेक्ट हो।
अभीक्ष्णज्ञानोपयोगी, चिन्तनशील साधिका हो।।4।।

अमर रहेगी इस धरती पर तेरी गौरव गाथा तब तक।
जब तक सूरज चांद प्रकाशित होता रहेगा पृथ्वी पर।।
माँ के चरणों की धूलि बनूँ यही भावना भाती हूँ।
मिले सदा आशीष आपका, यही प्रार्थना करती हूँ।।5।।

इन्हीं शब्दों के साथ युगप्रवर्तिका, चारित्रचन्द्रिका, श्रुतप्रकाशिका, गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के चरणों में मेरा कोटि-कोटि नमन।

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला के सहयोगी

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान के अन्तर्गत ''वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला'' की स्थापना सन् 1972 में हुई। तब से अब तक लाखों की संख्या में ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका है और निरन्तर हो रहा है। ग्रंथमाला से पाठकों को ग्रन्थ कम कीमत में प्राप्त हो सकें, इस दृष्टि से ग्रन्थमाला में एक संरक्षक योजना अगस्त सन् 1990 से प्रारंभ की गई है। इस योजना के अन्तर्गत निम्न महानुभाव अब तक संरक्षक बनकर अपना सहयोग प्रदान कर चुके हैं।

शिरोमणि संरक्षक

1. श्रीमती निर्मला जैन ध.प. स्व. श्री प्रेमचन्द्र जैन, तत्पुत्र प्रदीप कुमार जैन, खारी बावली, दिल्ली-6।
2. श्रीमती सुमन जैन ध.प. श्री दिग्विजय सिंह जैन, इंदौर।
3. श्री महावीर प्रसाद जैन संघपति, जी-19, साऊथ एक्सटेन्शन, नई दिल्ली।
4. श्री महेन्द्र पाल हरेन्द्र कुमार जैन, सूरजमल विहार, दिल्ली।
5. श्रीमती मोहनी जैन ध.प. श्री सुनील जैन, प्रीत विहार, दिल्ली।
6. श्री देवेन्द्र कुमार जैन (धारूहेड़ा वाले) गुड़गाँव (हरि.)।
7. श्रीमती शारदा रानी जैन ध.प. स्व. रिखबचंद जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली-92।
8. डॉ. देवेन्द्र कुमार जैन, भोपाल (म.प्र.)।
9. श्रीमती संगीता जैन ध.प. श्री संजीव कुमार जैन, शेरकोट (बिजनौर) उ.प्र.।
10. श्री अनिल कुमार जैन, दरियागंज, दिल्ली।
11. श्री बी.डी. मदनाइक, मुम्बई।
12. श्री धनकुमार जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली।
13. श्री जितेन्द्र कुमार जैन एवं श्रीमती सुनीता जैन कोटड़िया, फ्लोरिडा, यू.एस.ए.।
14. श्रीमती विमला देवी जैन ध.प. श्री ओमप्रकाश जैन, स्वालिक नगर, हरिद्वार (उत्तराखंड)।
15. श्री अमित जैन एवं संभव जैन सुपुत्र श्रीमती अनीता जैन ध.प. श्री मूलचंद जैन पाटनी, दिसपुर (कामरूप) आसाम।
16. श्रीमती अजित कुमारी जैन ध.प. श्री महेन्द्र कुमार जैन, ओबेदुल्लागंज (रायसेन) म.प्र.।
17. श्री नाभिकुमार जैन, जैन बुक डिपो, सी-4, पी.वी.आर. प्लाजा के पीछे, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली।

18. श्रीमती आरती जैन ध.प.स्व. श्री प्रकाशचंद जैन 'शीशे वाले', इलाहाबाद (उ.प्र.)
19. स्व. श्री गीसुलाल जी-आयचुकी सेठी ग्राम मेड़तारोड (नागौर) की स्मृति में द्वारा श्री चम्पालाल, बुद्धराज, शांतिलाल पौत्र राजेन्द्र पपौत्र भव्य सेठी, इचलकरंजी (कोल्हापुर) महा.

परम संरक्षक

1. श्री माँगीलाल बाबूलाल पहाड़े, हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)।
2. डॉ. प्रकाशचन्द्र जैन, 792 विवेकानंदपुरी, सिविल लाइन, सीतापुर (उ.प्र.)।
3. श्री सुमत प्रकाश जैन, गज्जू कटरा, शाहदरा, दिल्ली।
4. श्री सुनील कुमार जैन, द्वारा-सुनील टैक्सटाईल्स, सरधना (मेरठ) उ.प्र.।
5. श्री प्रकाश चंद अमोलक चंद जैन सर्राफ, सनावद (म.प्र.)।
6. श्री प्रद्युम्न कुमार जवेरी, रोकड़ियालेन, बोरीवली (वेस्ट) मुंबई।
7. श्रीमती उर्मिला देवी ध.प. श्री कान्ती प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
8. श्रीमती उषा जैन ध.प. श्री विमल प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
9. श्री आनन्द प्रकाश जैन (सौरम वाले) , गांधीनगर, दिल्ली।
10. श्रीमती सरिता जैन ध.प. श्री राजकुमार जैन, किदवई नगर, कानपुर।
11. स्व. श्रीमती कैलाशवती ध.प. श्री कैलाश चन्द्र जैन , तोपखाना बाजार, मेरठ।
12. श्री भानेन्द्र कुमार जैन, द्वारा-श्री विद्या जैन, भगत सिंह मार्ग, जयपुर।
13. श्री प्रदीप कुमार शान्तिलाल बिलाला, अनूपनगर, इंदौर, (म.प्र.)।
14. श्री सुरेशचंद पवन कुमार जैन, बाराबंकी (उ.प्र.)।
15. श्री नथमल पारसमल जैन, कलकत्ता-7।
16. श्रीमती स्व. शांताबाई ध.प. श्री कमलचंद जैन, सनावद (म.प्र.)।
17. श्री रूपचंद जैन कटारिया, दिल्ली।
18. श्री आशु जैन, कालका जी, नई दिल्ली
19. श्री प्रद्युम्न कुमार जैन छोटी सा., अमर चंद जैन सर्राफ, लखनऊ (उ.प्र.)
20. श्रीमती शशि जैन ध.प. श्री दिनेशचंद जैन, शिवालिक नगर, हरिद्वार (उत्तराखंड)।

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान-संक्षिप्त परिचय

—जीवन प्रकाश जैन (प्रबंध सम्पादक)

ईसवी सन् 1972 में पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से स्थापित उक्त संस्था के द्वारा जम्बूद्वीप रचना के निर्माण हेतु मेरठ (उ.प्र.) के ऐतिहासिक तीर्थ हस्तिनापुर में नशिया मार्ग पर जुलाई 1974 में एक भूमि क्रय की गई, जहाँ सर्वप्रथम 24वें तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी की अवगाहना प्रमाण सात हाथ (सवा दस फुट) ऊँची खड्गासन प्रतिमा विराजमान करने हेतु फरवरी 1975 में एक लघुकाय जिनालय का निर्माण किया गया, जो सन् 1990 में एक अनोखे 'कमल मंदिर' के रूप में निर्मित हुआ है। यहाँ विराजमान कल्पवृक्ष भगवान महावीर से यह अतिशय क्षेत्र निरंतर प्रगति पथ पर अग्रसर होता हुआ नित्य नये निर्माणों के द्वारा संसार में अद्वितीय पर्यटन स्थल के रूप में प्रसिद्ध हुआ है। इस प्रतिमा के दर्शन करके भक्तगण अपनी मनोकामनाएँ पूर्ण करते हैं।

जम्बूद्वीप निर्माण का प्रथम चरण—जुलाई सन् 1974 में रखी गई नींव के आधार पर जम्बूद्वीप के बीचोंबीच में सर्वप्रथम आगम वर्णित सुमेरुपर्वत (101 फुट ऊँचा) का निर्माण अप्रैल सन् 1979 में एवं सन् 1985 में जम्बूद्वीप रचना का निर्माण पूर्ण हुआ। सोलह जिनमंदिरों से समन्वित उस सुमेरुपर्वत के अंदर से निर्मित 136 सीढ़ियों से चढ़कर श्रद्धालु भक्त समस्त भगवन्तों के दर्शन करके जब सबसे ऊपर पाण्डुकशिला के निकट पहुँचते हैं, तो नीचे जम्बूद्वीप रचना के सभी नदी, पर्वत, मंदिर, उपवन आदि दृश्यों के साथ-साथ हस्तिनापुर के आसपास के सुदूरवर्ती ग्रामों का भी प्राकृतिक सौंदर्य देखकर फूले नहीं समाते हैं।

यात्री सुविधा—हस्तिनापुर तीर्थ में जम्बूद्वीप स्थल के पूरे परिसर में संस्थान द्वारा कार्यालय का सक्रिय संचालन किया जाता है। वहाँ यात्रियों के ठहरने हेतु आधुनिक सुविधायुक्त 200 कमरे, 50 से अधिक डीलक्स फ्लैट एवं अनेकों गेस्ट हाउस (बंगले) बने हुए हैं। इसके साथ ही यहाँ सुन्दर भोजनालय है जहाँ यात्रियों को सुविधापूर्वक शुद्ध भोजन प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त 2 किमी. दूर हस्तिनापुर सेन्ट्रल टाउन में सरकारी अस्पताल, डाकखाना, बाजार, इंटरकालेज तथा अन्य शिक्षण संस्थाएँ आदि सभी आवश्यक सुविधाएँ उपलब्ध हैं।

हस्तिनापुर कैसे पहुँचे ?—भारत की राजधानी दिल्ली से 110 किमी. पश्चिमी उत्तरप्रदेश में जिला-मेरठ से 40 किमी. दूर हस्तिनापुर तीर्थ है। राजधानी दिल्ली से हस्तिनापुर के लिए अंतर्राज्यी बस अड्डे अथवा आनंद विहार बस अड्डे से उत्तरप्रदेश रोडवेज तथा डी.टी.सी. बसों की निरंतर सेवा उपलब्ध है। मेरठ से भी प्रति आधे घंटे के अंतराल से जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर पहुँचने हेतु रोडवेज की बसें सुलभता के साथ उपलब्ध रहती हैं। 'जम्बूद्वीप' के नाम से ये बसें चलती हैं जो सीधे जम्बूद्वीप के सामने ही रुकती हैं और जम्बूद्वीप से ही मेरठ, दिल्ली, तिजारा आदि यात्रा हेतु बसें उपलब्ध रहती हैं। दिल्ली और मेरठ के बीच रेल सेवा भी है। देश-विदेश के यात्रीगण हस्तिनापुर पधारकर इस धरती का स्वर्ग मानी जाने वाली 'जम्बूद्वीप रचना' के दर्शन करें और मानसिक शांति का अनुभव करते हुए मनवांछित फल प्राप्त करें, यही मंगलकामना है।

विषय सारणी

क्र.	विषय	पृ. सं.
1.	मंगलाचरण	1
2.	तीनलोक की ऊँचाई का प्रमाण	4
3.	मध्यलोक का वर्णन	4
4.	जम्बूद्वीप का वर्णन	5
5.	जम्बूद्वीप के भरत आदि क्षेत्रों एवं पर्वतों का प्रमाण	5
6.	जम्बूद्वीप का स्पष्टीकरण (चार्ट नं.-1)	6
7.	विजयार्ध पर्वत का वर्णन	7
8.	हिमवान पर्वत का वर्णन	8
9.	गंगा आदि नदियों के निकलने का क्रम	8
10.	पद्म आदि सरोवर एवं देवियाँ (चार्ट नं.-2)	9
11.	गंगा नदी का वर्णन	10
12.	गंगा देवी के श्रीगृह का वर्णन	10
13.	ज्योतिर्लोक का वर्णन	10
14.	ज्योतिष्क देवों की पृथ्वीतल से ऊँचाई का क्रम	11
15.	ज्योतिष्क देवों की पृथ्वीतल से ऊँचाई (चार्ट नं.-3)	11
16.	सूर्य, चन्द्र आदि के विमानों का प्रमाण	12
17.	ज्योतिष्क देवों के बिम्बों का प्रमाण (चार्ट नं.-4)	12
18.	ज्योतिष्क विमानों की किरणों का प्रमाण	13
19.	वाहन जाति के देव	13
20.	शीत एवं उष्ण किरणों का कारण	13
21.	सूर्य, चन्द्र के विमानों में स्थित जिनमंदिर का वर्णन	14
22.	चन्द्र के भवनों का वर्णन	14
23.	इन देवों की आयु का प्रमाण	15

क्र.	विषय	पृ. सं.
24.	सूर्य के बिम्ब का वर्णन	15
25.	बुध आदि ग्रहों का वर्णन	16
26.	सूर्य का गमन क्षेत्र	16
27.	दोनों सूर्यों का आपस में अंतराल का प्रमाण	17
28.	सूर्य की अभ्यंतर गली की परिधि का प्रमाण	18
29.	दिन-रात्रि के विभाग का क्रम	18
30.	छोटे-बड़े दिन होने का विशेष स्पष्टीकरण	19
31.	दक्षिणायन एवं उत्तरायण	20
32.	एक मुहूर्त में सूर्य के गमन का प्रमाण	20
33.	एक मिनट में सूर्य का गमन	20
34.	अधिक दिन एवं मास का क्रम	21
35.	सूर्य के ताप का चारों तरफ फैलने का क्रम	21
36.	लवण समुद्र के छठे भाग की परिधि	21
37.	सूर्य के प्रथम गली में रहने पर ताप-तम का प्रमाण	21
38.	सूर्य के मध्यम गली में रहने पर ताप-तम का प्रमाण	22
39.	सूर्य के अंतिम गली में रहने पर ताप-तम का प्रमाण	22
40.	चक्रवर्ती के द्वारा सूर्य के जिनबिम्ब का दर्शन	23
41.	पक्ष-मास-वर्ष आदि का प्रमाण	23
42.	दक्षिणायन एवं उत्तरायण का क्रम	24
43.	सूर्य के 184 गलियों के उदय स्थान	24
44.	चन्द्रमा का विमान, गमन क्षेत्र एवं गलियाँ	24
45.	चन्द्र को एक गली के पूरा करने का काल	25
46.	चन्द्र का एक मुहूर्त में गमन क्षेत्र	25
47.	एक मिनट में चन्द्रमा का गमन क्षेत्र	25
48.	द्वितीयादि गलियों में स्थित चन्द्रमा का गमन क्षेत्र	25

क्र.	विषय	पृ. सं.
49.	कृष्ण पक्ष-शुक्ल पक्ष का क्रम	26
50.	चन्द्रग्रहण-सूर्य ग्रहण का क्रम	27
51.	सूर्य चन्द्रादिकों का तीव्र-मंद गमन	27
52.	एक चन्द्र का परिवार	27
53.	कोड़ाकोड़ी का प्रमाण	27
54.	एक तारे से दूसरे तारे का अंतर	27
55.	जम्बूद्वीप संबंधी तारे	28
56.	ध्रुव ताराओं का प्रमाण	28
57.	ढाईद्वीप एवं दो समुद्र संबंधी सूर्य चन्द्रादिकों का प्रमाण	29
58.	मानुषोत्तर पर्वत के पूर्व के ही ज्योतिष्क देवों का भ्रमण	29
59.	28 नक्षत्रों के नाम	29
60.	नक्षत्रों की गलियाँ	29
61.	नक्षत्रों की एक मुहूर्त में गति का प्रमाण	30
62.	लवण समुद्र का वर्णन	30
63.	लवण समुद्र में ज्योतिष्क देवों का गमन	31
64.	अन्तर्द्वीपों का वर्णन	32
65.	कुभोग भूमियाँ मनुष्य का वर्णन	32
66.	लवण समुद्र के ज्योतिष्क देवों का गमन क्षेत्र	32
67.	धातकीखण्ड के सूर्य चन्द्रादि का वर्णन	33
68.	कालोदधि के सूर्य, चन्द्रादिकों का वर्णन	34
69.	पुष्करार्धद्वीप के सूर्य, चन्द्र	34
70.	मनुष्य क्षेत्र का वर्णन	36
71.	अढ़ाई द्वीप के चन्द्र (परिवार सहित) (चार्ट नं.-5)	37
72.	जम्बूद्वीपादि के नाम एवं उनमें क्षेत्रादि व्यवस्था	37
73.	विदेह क्षेत्र का विशेष वर्णन	38

क्र.	विषय	पृ. सं.
74.	170 कर्मभूमियों का वर्णन	38
75.	इन क्षेत्रों में काल परिवर्तन का क्रम	38
76.	30 भोगभूमियाँ	39
77.	जम्बूद्वीप के अकृत्रिम चैत्यालय	39
78.	मध्यलोक के सम्पूर्ण अकृत्रिम चैत्यालय	40
79.	ढाईद्वीप के बाहर स्थित ज्योतिष्क देवों का वर्णन	41
80.	पुष्करवर समुद्र के सूर्य चन्द्रादिक	42
81.	असंख्यात द्वीप समुद्रों में सूर्य चन्द्रादि	42
82.	ज्योतिर्वासी देवों में उत्पत्ति के कारण	43
83.	योजन एवं कोस बनाने की विधि	44
84.	भू-भ्रमण का खण्डन	45
85.	सूर्य-चन्द्र के बिम्ब की सही संख्या का स्पष्टीकरण	48
86.	ज्योतिर्लोक जिनालय स्तोत्र	51

मंगलाचरण

वेसदछपण्णंगुल-कदि-हिद-पदरस्स संखभागमिदे।
जोइस-जिणिन्दगेहे, गणणातीदे णमंसामि।।

अर्थ—दो सौ छप्पन अंगुल के वर्ग प्रमाण (पण्णट्ठी प्रमाण) प्रतरांगुल का जगत्प्रतर में भाग देने से जो लब्ध आवे उतने ज्योतिषी देव हैं। संख्यातों ज्योतिर्वासी देव एकबिम्ब में रहते हैं। एक-एक बिंब में 1-1 चैत्यालय हैं। इसलिये ज्योतिष्क देवों के प्रमाण में संख्यात का भाग देने से ज्योतिष्क देव सम्बन्धी जिन चैत्यालयों का प्रमाण आता है जो कि असंख्यातरूप ही है। उन ज्योतिष्क देव सम्बन्धी असंख्यात जिन चैत्यालयों को और उनमें स्थित जिन प्रतिमाओं को मैं भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ।

वर्तमान में वैज्ञानिकों की चन्द्रलोक यात्रा की चर्चा यत्र-तत्र-सर्वत्र ही हो रही है। जैन एवं अजैन, सभी बन्धुगण प्रायः इस चर्चा में बड़ी ही रुचि से भाग ले रहे हैं, जैन सिद्धान्त के अनुसार यह यात्रा कहाँ तक वास्तविक है, इस पुस्तक को पढ़ने वाले आस्तिक्य बुद्धिधारी पाठकगण स्वयमेव ही निर्णय कर सकते हैं।

इस विषय पर विशेष ऊहापोह न करके इस पुस्तक में केवल जैन सिद्धान्त के अनुसार ज्योतिर्लोक का कुछ थोड़ा-सा वर्णन किया जा रहा है।

आज प्रायः बहुत से जैन बन्धुओं को भी यह मालूम नहीं है कि जैन सिद्धान्त में सूर्य, चन्द्रमा एवं नक्षत्रों आदि के विमानों का क्या प्रमाण है एवं वे यहाँ से कितनी ऊँचाई पर हैं इत्यादि ? क्योंकि त्रिलोकसार, तिलोयपण्णत्ति, लोक-विभाग, श्लोकवार्तिक आदि ग्रन्थों के स्वाध्याय का प्रायः आजकल अभाव सा ही देखा जाता है।

इसीलिए कुछ जैन बन्धु भी भौतिक चकाचौंध में पड़कर वैज्ञानिकों के वाक्यों को ही वास्तविक मान लेते हैं अथवा कोई-कोई बन्धु संशय के झूले में ही झूलने लगते हैं।

वास्तव में वैज्ञानिक लोग तो हमेशा ही किसी भी विषय के अन्वेषण एवं परीक्षण में ही लगे रहते हैं। किसी भी विषय में अंतिम निर्णय देने में वे स्वयं ही असमर्थ हैं। ऐसा वे स्वयं ही लिखा करते हैं।

—वैज्ञानिकों का पृथ्वी के बारे में कथन—

सौरमण्डल एवं पृथ्वी की उत्पत्ति एक रहस्यमय पहेली है। इस बारे निश्चितरूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। अलग-अलग विद्वानों ने अपनी बुद्धि एवं तर्क के अनुसार अलग-अलग मत प्रचलित किये मतों के अध्ययन के पश्चात् हम इसी निर्णय पर पहुँचते हैं। ब्रह्माण्ड के समक्ष मानव एक क्षणभंगुर प्राणी है। उसका ज्ञान सीमित है। प्रकृति के रहस्यों को ज्ञात करने के लिये जो साधन उनके पास उपलब्ध हैं, वे सीमित हैं, अपूर्ण हैं। वैज्ञानिकों के विभिन्न सिद्धान्तों को हम रहस्योद्घाटन की अटकलें मात्र कह सकते हैं। वास्तव में कुछ मान्यताओं के आधार पर आश्रित अनुमान ही हैं।"[1]

इस प्रकार हमेशा ही वैज्ञानिक लोग शोध में ही लगे रहने से निश्चित उत्तर नहीं दे सकते हैं।

परन्तु अनादिनिधन जैन सिद्धान्त में परम्परागत सर्वज्ञ भगवान ने सम्पूर्ण जगत को केवलज्ञानरूपी दिव्य चक्षु से प्रत्यक्ष देखकर प्रत्येक वस्तु तत्त्व का

1. सामान्य शिक्षा पुस्तक बी.ए. कोर्स की 1967 में छपी।

वास्तविक वर्णन किया है। उनमें कुछ ऐसे भी विषय हैं, जो कि हम लोगों की बुद्धि एवं जानकारी से परे हैं। उसके लिये कहा है कि–

सूक्ष्मं जिनोदितं तत्त्वं, हेतुभिर्नैव हन्यते।
आज्ञासिद्धं तु तद्ग्राह्यं, नान्यथावादिनो जिनाः।।

अर्थ—जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहा गया कोई-कोई तत्त्व अत्यन्त सूक्ष्म है। किसी भी हेतु के द्वारा उसका खण्डन नहीं हो सकता है परन्तु—"जिनेन्द्र देव ने ऐसा कहा है" इतने मात्र से ही उस पर श्रद्धान करना चाहिये। क्योंकि "जिनेन्द्र भगवान अन्यथावादी नहीं हैं" इस प्रकार की श्रद्धा से जिनका हृदय ओतप्रोत है उन्हीं महानुभावों के लिये यह मेरा प्रयास है।

तथा जो आधुनिक जैन बन्धु या अजैन बन्धु अथवा वैज्ञानिक लोग जो कि मात्र जैनधर्म में "ज्योतिर्लोक के विषय में क्या मान्यता है" यह जानना चाहते हैं, उनके लिये ही संक्षेप से यह पुस्तक लिखी गई है।

आज से लगभग 1200 वर्ष पहले भी आचार्य श्री विद्यानंद स्वामी ने श्लोकवार्तिक ग्रन्थ में भूभ्रमण खण्डन एवं ज्योतिर्लोक के विषय पर अत्यधिक प्रकाश डाला था। जिसकी हिन्दी स्व. पं. माणिकचन्द्रजी न्यायालंकार ने बहुत विस्तृतरूप में की है। ये ग्रन्थराज सोलापुर से प्रकाशित हो चुके हैं।

इन प्रकरणों को विशेष समझने के लिये श्री श्लोकवार्तिक में "रत्नशर्कराबालुकापंक" इत्यादि सूत्र का अर्थ तथा "मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके" सूत्र का अर्थ अवश्य देखें तथा लोकविभाग का छठा अधिकार एवं तिलोयपण्णत्ति दूसरे भाग का सातवां अधिकार भी अवश्य देखना चाहिये।

विशेष—जैनागम में योजन के 2 भेद हैं—1. लघु योजन, 2. महा योजन। 4 कोश का लघु योजन एवं 2000 कोश का महायोजन होता है। योजन एवं कोश आदि का विशेष विवरण इसी पुस्तक के अन्त में दिया गया है। यहाँ तो लोक प्रसिद्ध 1 कोश में 2 मील माने हैं उसी के अनुसार 1 महायोजन में स्थूलरूप से 4000 मील मानकर सर्वत्र 4000 से ही गुणा करके मील की संख्या बताई गई। क्योंकि जम्बूद्वीप आदि द्वीप, समुद्र, ज्योतिर्वासी बिम्ब आदि एवं पृथ्वीतल से उनकी ऊँचाई आदि तथा सूर्य, चन्द्र की गली[1] एवं गमन आदि का प्रमाण आगम में महायोजन से माना है।

1. भ्रमण मार्ग।

अब यहाँ सूर्य-चन्द्र आदि के स्थान, गमन आदि के क्षेत्र को बतलाने के लिये प्रारम्भ में कुछ अति संक्षिप्त भौगोलिक (द्वीप, समुद्र सम्बन्धी) प्रकरण ले लिया है। अनंतर ज्योतिर्लोक का वर्णन किया जायेगा।

आकाश के 2 भेद हैं—1. लोकाकाश, 2. अलोकाकाश।

लोकाकाश के 3 भेद हैं—1. अधोलोक, 2. मध्यलोक, 3. ऊर्ध्वलोक। अनन्त अलोकाकाश के बीचोंबीच में यह पुरुषाकार तीन लोक है।

तीन लोक की ऊँचाई का प्रमाण

तीन लोक की ऊँचाई 14 राजू प्रमाण है एवं मोटाई सर्वत्र 7 राजू है।

तीन लोक के जड़ भाग से लोक की ऊँचाई का प्रमाण—अधोलोक की ऊँचाई = 7 राजू। इसमें 7 नरक हैं। प्रथम नरक के ऊपर की पृथ्वी का नाम चित्रा पृथ्वी है।

ऊर्ध्व लोक की ऊँचाई = 7 राजू है अर्थात् 7 राजू ऊँचाई प्रथम स्वर्ग से लेकर सिद्धशिला पर्यन्त है।

नरक के तल भाग में लोक की चौड़ाई = 7 राजू है।

यह चौड़ाई घटते-घटते मध्य लोक में = 1 राजू रह गई है। मध्य लोक से ऊपर बढ़ते-बढ़ते ब्रह्मलोक (5वें स्वर्ग) तक 5 राजू हो गई है।

5वें ब्रह्मलोक नामक स्वर्ग से ऊपर घटते-घटते सिद्धशिला तक चौड़ाई = 1 राजू रह गई है।

तीनों लोकों के बीचों-बीच में 1 राजू चौड़ी तथा 14 राजू लम्बी त्रस नाली है। इस त्रस नाली में ही त्रस जीव पाये जाते हैं।

मध्यलोक का वर्णन

मध्यलोक 1 राजू चौड़ा और 1 लाख 40 योजन[1] ऊँचा है। यह चूड़ी के आकार का है। इस मध्यलोक में असंख्यात द्वीप और असंख्यात समुद्र हैं।

1. असंख्यातों योजनों का 1 राजू होता है और 14 राजू ऊँचे लोक में 7 राजू में नरक एवं 7 राजू में स्वर्ग हैं। इन दोनों के मध्य में 1 लाख 40 योजन ऊँचा सुमेरू पर्वत है। बस इसी सुमेरू प्रमाण ऊँचाई वाला मध्यलोक है जो कि ऊर्ध्वलोक का कुछ भाग है और वह राजू में नाकुछ के समान है। अतएव ऊँचाई में उसका वर्णन नहीं आया।

जम्बूद्वीप का वर्णन

इस मध्यलोक में 1 लाख योजन व्यास वाला अर्थात् 400000000 (40 करोड़) मील विस्तार वाला जम्बूद्वीप स्थित है। जम्बूद्वीप को घेरे हुये 2 लाख योजन विस्तार (व्यास) वाला लवण समुद्र है। लवण समुद्र को घेरे हुए 4 लाख योजन व्यास वाला धातकीखण्ड द्वीप है। धातकीखण्ड को घेरे हुए 8 लाख योजन व्यास वाला वलयाकार कालोदधि समुद्र है। उसके पश्चात् 16 लाख योजन व्यास वाला पुष्करवर द्वीप है। इसी तरह आगे-आगे द्वीप तथा समुद्र क्रम से दूने-दूने प्रमाण वाले होते गये हैं।

अन्त के द्वीप और समुद्र का नाम स्वयंभूरमण द्वीप और स्वयंभूरमण समुद्र है। कालोदधि समुद्र के बाद पाये जाने वाले असंख्यातों द्वीपों और समुद्रों के नाम सदृश ही हैं। अर्थात् जो द्वीप का नाम है वही समुद्र का नाम है। पाँचवें समुद्र का नाम क्षीरोदधि समुद्र है। इस समुद्र का जल दूध के समान है। भगवान के जन्माभिषेक के समय देवगण इसी समुद्र का जल लाकर भगवान का अभिषेक करते हैं।

आठवाँ नंदीश्वर नाम का द्वीप है। इसमें 52 जिन चैत्यालय हैं। प्रत्येक दिशा में 13-13 चैत्यालय हैं। देवगण वहाँ भक्ति से दर्शन, पूजन आदि करके महान पुण्य संपादन करते रहते हैं।

जम्बूद्वीप के मध्य में 1 लाख योजन ऊँचा तथा 10 हजार योजन विस्तार वाला सुमेरू[1] पर्वत है। इस जम्बूद्वीप में 6 कुलाचल (पर्वत) एवं 7 क्षेत्र हैं। 6 कुलाचलों के नाम–1. हिमवान्, 2. महाहिमवान्, 3. निषध, 4. नील, 5. रुक्मि, 6. शिखरी।

सात क्षेत्रों के नाम–1.भरत, 2. हैमवत, 3. हरि, 4. विदेह, 5. रम्यक्, 6. हैरण्यवत, 7. ऐरावत।

जम्बूद्वीप के भरत आदि क्षेत्रों एवं पर्वतों का प्रमाण

भरत क्षेत्र का विस्तार जम्बूद्वीप के विस्तार का 190वाँ भाग है। अर्थात् $\frac{100000}{190} = 526\frac{6}{19}$ योजन अर्थात् $2105263\frac{3}{19}$ मील है। भरत क्षेत्र के आगे हिमवन पर्वत का विस्तार भरत क्षेत्र से दूना है। इस प्रकार आगे-आगे क्रम से

1. यह पर्वत विदेह क्षेत्र के बीच में है।

पर्वतों से दूना क्षेत्रों का तथा क्षेत्रों से दूना पर्वतों का विस्तार होता गया है। यह क्रम विदेह क्षेत्र तक ही जानना। विदेह क्षेत्र के आगे-आगे के पर्वतों और क्षेत्रों का विस्तार क्रम से आधा-आधा होता गया है। (विशेष रूप से देखिये–चार्ट नं. 1)

जम्बूद्वीप का स्पष्टीकरण

चार्ट नं-1

	क्षेत्र तथा कुलाचलों के नाम	विस्तार		पर्वतों की ऊँचाई योजन से	पर्वतों की ऊँचाई योजन से	पर्वतों के वर्ण
		योजन	मील			
क्षेत्र	भरत	526	210563	–	–	–
पर्वत	हिमवान	1052	4210526	100	400000	सुवर्ण
क्षेत्र	हैमवत	2105	8421052	–	–	–
पर्वत	महाहिमवान	4210	16842105	200	800000	रजत
क्षेत्र	हरि	8421	33684210	–	–	–
पर्वत	निषध	16842	67368421	400	1600000	तपा सोना
क्षेत्र	विदेह	33684	134736842	–	–	–
पर्वत	नील	16842	67368421	400	1600000	वैडूर्यमणि
क्षेत्र	रम्यक	8421	33684210	–	–	–
पर्वत	रुक्मी	4210	1684105	200	800000	रजत
क्षेत्र	हैरण्यवत	2105	8421052	–	–	–
पर्वत	शिखरी	1052	4210526	100	400000	सुवर्ण
क्षेत्र	ऐरावत	526	2105263	–	–	–

विजयार्ध पर्वत का वर्णन

भरत क्षेत्र के मध्य में विजयार्ध पर्वत है। यह विजयार्ध पर्वत 50 योजन (200000 मील) चौड़ा और 25 योजन (100000 मील) ऊँचा है एवं लम्बाई दोनों तरफ से लवण समुद्र को स्पर्श कर रही है। पर्वत के ऊपर दक्षिण और उत्तर दोनों तरफ इस धरातल से 10 योजन ऊपर तथा 10 योजन ही भीतर समतल में विद्याधरों की नगरियाँ हैं। जो कि दक्षिण में 50 एवं उत्तर में 60 हैं। उससे 10 योजन और ऊपर एवं अन्दर जाकर समतल में आभियोग्य जाति के देवों के भवन हैं। उससे ऊपर (अवशिष्ट) 5 योजन जाकर समतल पर 9 कूट हैं। इन कूटों में सिद्धायतन नामक 1 कूट में जिन चैत्यालय एवं 8 कूटों में व्यंतरों के आवास स्थान हैं।

इस चैत्यालय की लम्बाई = 1 कोस[1], चौड़ाई = कोस एवं ऊँचाई = कोस की है। यह चैत्यालय अकृत्रिम है।

इस चैत्यालय में 108 अकृत्रिम जिन प्रतिमायें हैं एवं अष्टमंगल द्रव्य, तोरण, माला, कलश, ध्वज आदि महान विभूतियों से ये चैत्यालय विभूषित हैं।

यह विजयार्ध पर्वत रजतमयी है। इसी प्रकार का विजयार्ध पर्वत ऐरावत क्षेत्र में भी इसी प्रमाण वाला है।

विजयार्ध पर्वत

चौड़ाई (50 योजन)

ऊँचाई 25 योजन

विद्याधरों की नगरी 60	10 योजन
आभियोग्य जाति के देवों के पुर	10 योजन
9 कूट = 8 कूट + 1 चैत्यालय	5 योजन
आभियोग्य जाति के देवों के पुर	10 योजन
विद्याधरों की नगरी 50	10 योजन

1. चैत्यालय का यह प्रमाण सबसे जघन्य है।

हिमवान पर्वत का वर्णन

हिमवन नामक पर्वत 1052 योजन (4210526 मील) विस्तार वाला है। इस पर्वत पर पद्म नामक सरोवर है। यह सरोवर 1000 योजन लम्बा, 500 योजन चौड़ा एवं 10 योजन गहरा है। इसके आगे-आगे के पर्वतों पर क्रम से महापद्म, तिगिंच्छ, केशरी, पुंडरीक, महापुंडरीक नाम के सरोवर हैं। पद्म सरोवर से दूनी लम्बाई, चौड़ाई एवं गहराई महापद्म सरोवर की है। महापद्म से दूनी तिगिंच्छ की है। इसके आगे के सरोवरों की लम्बाई, चौड़ाई एवं गहराई का प्रमाण क्रम से आधा-आधा होता गया है। इन सरोवरों के मध्य में क्रमशः 1, 2 एवं 4 योजन के कमल हैं। वे पृथ्वीकायिक हैं। उन कमलों पर श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि एवं लक्ष्मी ये 6 देवियाँ अपने परिवार सहित निवास करती हैं। (देखिये चार्ट नं-2)

गंगा आदि नदियों के निकलने का क्रम

पद्म सरोवर के पूर्व तट से गंगा नदी एवं पश्चिम तट से सिन्धु नदी निकली हैं। गंगा नदी पूर्व समुद्र में एवं सिन्धु नदी पश्चिम समुद्र में प्रवेश करती हैं। ये दोनों नदियाँ भरत क्षेत्र में बहती हैं। तथा इसी पद्म सरोवर के उत्तर तट से रोहितास्या नदी निकलकर हैमवत क्षेत्र में चली जाती है।

महापद्म सरोवर से रोहित एवं हरिकांता ये दो नदियाँ निकली हैं। तिगिंच्छ सरोवर से हरित एवं सीतोदा, केसरी सरोवर से सीता और नरकांता, महापुंडरीक सरोवर से नारी एवं रूप्यकूला तथा पुंडरीक नामक अंतिम सरोवर से रक्ता, रक्तोदा एवं स्वर्णकूला ये तीन नदियाँ निकली हैं। इस प्रकार 6 पर्वतों पर स्थित 6 सरोवरों से 14 नदियाँ निकली हैं। प्रत्येक सरोवर से 2-2 एवं पद्म तथा महापुंडरीक सरोवर से 3-3 नदियाँ निकली हैं।

यह गंगा और सिन्धु नदी विजयार्ध पर्वत को भेदती हुई जाती हैं। अतः भरत क्षेत्र को 6 खण्डों में बाँट देती हैं। विजयार्ध पर्वत के उस तरफ (उत्तर में) अर्थात् हिमवान और विजयार्ध के बीच 3 खण्ड हुए हैं। वे दोनों म्लेच्छ खण्ड कहलाते हैं तथा विजयार्ध के इस तरफ (दक्षिण में) 3 खण्ड हैं। उनमें आजू-बाजू के दो म्लेच्छ खंड और बीच का आर्यखंड है। इन पाँचों म्लेच्छ खण्डों के निवासी जाति, खान-पान अथवा आचरण से म्लेच्छ नहीं हैं किन्तु मात्र वे क्षेत्रज म्लेच्छ हैं।

चार्ट नं-2

पद्म आदि सरोवर एवं देवियाँ

सरोवरों के नाम	सरोवरों की लम्बाई		चौड़ाई		गहराई		देवियाँ
	योजन	मील	योजन	मील	योजन	मील	
पद्म	1000	4000000	500	2000000	10	40000	श्री देवी
महापद्म	2000	8000000	1000	4000000	20	80000	ह्री देवी
तिगिंछ	4000	16000000	2000	8000000	40	160000	धृति देवी
केसरी	4000	16000000	2000	8000000	40	160000	कीर्ति देवी
पुंडरीक	2000	8000000	1000	4000000	20	80000	बुद्धि देवी
महापुंडरीक	1000	4000000	500	2000000	10	40000	लक्ष्मी देवी

गंगा नदी का वर्णन

पद्म सरोवर से गंगा नदी निकलकर पाँच सौ योजन पूर्व की ओर जाती हुई गंगा कूट के 2 कोश इधर से दक्षिण की ओर मुड़कर भरत क्षेत्र में 25 योजन पर्वत से (उसे छोड़कर) यहाँ पर सवा छः योजन विस्तीर्ण, आधा योजन मोटी और आधा योजन ही आयत वृषभकार जिह्विका (नाली) है। इस नाली में प्रविष्ट होकर वह गंगा नदी उत्तम श्रीगृह के ऊपर गिरती हुई गोसींग के आकार होकर 10 योजन विस्तार के साथ नीचे गिरती है।

गंगा देवी के श्रीगृह का वर्णन

जहाँ गंगा नदी गिरती है वहाँ पर 60 योजन विस्तृत एवं 10 योजन गहरा एक कुण्ड है। उसमें 10 योजन ऊँचा वज्रमय एक पर्वत है। उस पर गंगा देवी का प्रासाद बना हुआ है। उस प्रासाद की छत पर एक अकृत्रिम जिनप्रतिमा केशों के जटाजूट युक्त शोभायमान है। गंगा नदी अपनी चंचल एवं उन्नत तरंगों से संयुक्त होती हुई जलधारा से जिनेन्द्र देव का अभिषेक करते हुए के समान ही गिरती है,
(6$\frac{1}{4}$) पुनः इस कुण्ड से दक्षिण की ओर जाकर आगे भूमि पर कुटिलता को प्राप्त होती हुई विजयार्ध की गुफा में 8 योजन विस्तृत होती हुई प्रवेश करती है। अन्त में 14 हजार नदियों से संयुक्त होकर पूर्व की ओर जाती हुई लवण समुद्र में प्रविष्ट हुई है। ये 14 हजार परिवार नदियाँ आर्यखण्ड में न बहकर म्लेच्छखण्डों में ही बहती हैं। इस गंगा नदी के समान ही अन्य 13 नदियों का वर्णन समझना चाहिये। अन्तर केवल इतना ही है कि भरत और ऐरावत में ही विजयार्ध पर्वत के निमित्त से क्षेत्र के 6 खण्ड होते हैं, अन्यत्र नहीं होते हैं।

ज्योतिर्लोक का वर्णन

ज्योतिष्क देवों के भेद

ज्योतिष्क देवों के 5 भेद हैं–1. सूर्य, 2. चन्द्रमा, 3. ग्रह, 4. नक्षत्र, 5. तारा।

इनके विमान चमकीले होने से इन्हें ज्योतिष्क देव कहते हैं। ये सभी विमान अर्धगोलक के सदृश हैं तथा मणिमय तोरणों से अलंकृत होते हुये निरन्तर देव-देवियों से एवं जिनमंदिरों से सुशोभित रहते हैं। अपने को जो सूर्य, चन्द्र, तारे आदि दिखाई देते हैं यह उनके विमानों का नीचे वाला गोलाकार भाग है।

ये सभी ज्योतिर्वासी देव मेरू पर्वत को 1121 योजन अर्थात् 44,84,000 मील छोड़कर नित्य ही प्रदक्षिणा के क्रम से भ्रमण करते हैं। इनमें चन्द्रमा एवं सूर्य ग्रह 510 योजन प्रमाण गमन क्षेत्र में स्थित परिधियों के क्रम से पृथक्-पृथक् गमन करते हैं। परन्तु नक्षत्र और तारे अपनी-अपनी एक परिधिरूप मार्ग में ही गमन करते हैं।

ज्योतिष्क देवों की पृथ्वी तल से ऊँचाई का क्रम

उपरोक्त 5 प्रकार के ज्योतिर्वासी देवों के विमान इस चित्रा पृथ्वी से 790 योजन से प्रारम्भ होकर 900 योजन की ऊँचाई तक अर्थात् 110 योजन में स्थित हैं। यथा–इस चित्रा पृथ्वी से 790 योजन के ऊपर प्रथम ही ताराओं के विमान हैं। अनन्तर 10 योजन जाकर अर्थात् पृथ्वीतल से 800 योजन जाकर सूर्य के विमान हैं तथा 80 योजन अर्थात् पृथ्वी तल से 880 योजन (35,20,000 मील) पर चन्द्रमा के विमान हैं। (पूरा विवरण चार्ट नं-3 में देखिये)

चार्ट नं-3

ज्योतिष्क देवों की पृथ्वी तल से ऊँचाई

विमानों के नाम	(चित्रा पृथ्वी से ऊँचाई)	
	योजन में	मील में
इस पृथ्वी से तारे	790 योजन से ऊपर	3160000 मील पर
इस पृथ्वी से सूर्य	800 योजन से ऊपर	3200000 मील पर
इस पृथ्वी से चन्द्र	880 योजन से ऊपर	3520000 मील पर
इस पृथ्वी से नक्षत्र	884 योजन से ऊपर	3536000 मील पर
इस पृथ्वी से बुध	888 योजन से ऊपर	3552000 मील पर
इस पृथ्वी से शुक्र	891 योजन से ऊपर	3564000 मील पर
इस पृथ्वी से गुरु	894 योजन से ऊपर	3576000 मील पर
इस पृथ्वी से मंगल	897 योजन से ऊपर	3588000 मील पर
इस पृथ्वी से शनि	900 योजन से ऊपर	3600000 मील पर

सूर्य, चन्द्र आदि के विमानों का प्रमाण

सूर्य का विमान योजन का है। यदि 1 योजन में 4000 मील के अनुसार गुणा किया जाये तो 3147 मील का होता है एवं चन्द्रमा का विमान योजन अर्थात् 3672 मील का है।

शुक्र का विमान 1 कोश का है। यह बड़ा कोश लघु कोश से 500 गुणा है। अतः 500 2 मील से गुणा करने पर 1000 मील का आता है। इसी प्रकार आगे–

ताराओं के विमानों का सबसे जघन्य प्रमाण कोश अर्थात् 250 मील का है। (देखिये चार्ट नं-4)

चार्ट नं-4

ज्योतिष्क देवों के बिम्बों का प्रमाण

बिम्बों का प्रमाण	योजन से	मील से	किरणें
सूर्य	योजन	3147	12000
चन्द्र	योजन	3672	12000
शुक्र	1 कोश	1000	2500
बुध	कुछ कम आधा कोश	कुछ कम 500 मील	मंद किरणें
मंगल	कुछ कम आधा कोश	कुछ कम 500 मील	मंद किरणें
शनि	कुछ कम आधा कोश	कुछ कम 500 मील	मंद किरणें
गुरु	कुछ कम 1 कोश	कुछ कम 1000 मील	मंद किरणें
राहु	कुछ कम 1 योजन	कुछ कम 4000 मील	मंद किरणें
केतु	कुछ कम 1 योजन	कुछ कम 4000 मील	मंद किरणें
तारे	कोश	250 मील	मंद किरणें

इन सभी विमानों की बाह्य (मोटाई) अपने-अपने विमानों के विस्तार से आधी-आधी मानी गयी है।

राहु के विमान चन्द्र विमान के नीचे एवं केतु के विमान सूर्य विमान के नीचे रहते हैं अर्थात् 4 प्रमाणांगुल (2000 उत्सेधांगुल) प्रमाण ऊपर चन्द्र-सूर्य के विमान

स्थित होकर गमन करते रहते हैं। ये राहु-केतु के विमान 6-6 महीने में पूर्णिमा एवं अमावस्या को क्रम से चन्द्र एवं सूर्य के विमानों को आच्छादित करते हैं। इसे ही ग्रहण कहते हैं।

ज्योतिष्क विमानों की किरणों का प्रमाण

सूर्य एवं चन्द्र की किरणें 12000-12000 हैं। शुक्र की किरणें 2500 हैं। बाकी सभी ग्रह, नक्षत्र एवं तारकाओं की मंद किरणें हैं।

वाहन जाति के देव

इन सूर्य और चन्द्र के प्रत्येक (विमानों को) आभियोग्य जाति के 4000 देव विमान के पूर्व में सिंह के आकार को धारण कर, दक्षिण में 4000 देव हाथी के आकार को, पश्चिम में 4000 देव बैल के आकार को एवं उत्तर में 4000 देव घोड़े के आकार को धारण कर (इस प्रकार 16000 देव) सतत खींचते रहते हैं।

इसी प्रकार ग्रहों के 8000, नक्षत्रों के 4000 एवं ताराओं के 2000 वाहन जाति के देव होते हैं।

गमन में चन्द्रमा सबसे मंद है। सूर्य उसकी अपेक्षा शीघ्रगामी है। सूर्य से शीघ्रतर ग्रह, ग्रहों से शीघ्रतर नक्षत्र एवं नक्षत्रों से भी शीघ्रतर गति वाले तारागण हैं।

शीत एवं उष्ण किरणों का कारण

पृथ्वी के परिणामस्वरूप (पृथ्वीकायिक) चमकीली धातु से सूर्य का विमान बना हुआ है, जो कि अकृत्रिम है।

इस सूर्य के बिम्ब में स्थित पृथ्वीकायिक जीवों के आतप नामकर्म का उदय होने से उसकी किरणें चमकती हैं तथा उसके मूल में उष्णता न होकर सूर्य की किरणों में ही उष्णता होती है। इसलिये सूर्य की किरणें उष्ण हैं।

उसी प्रकार चन्द्रमा के बिम्ब में रहने वाले पृथ्वीकायिक जीवों के उद्योत नामकर्म का उदय है जिसके निमित्त से मूल में तथा किरणों में सर्वत्र ही शीतलता पाई जाती है। इसी प्रकार ग्रह, नक्षत्र, तारा आदि सभी के बिम्ब-विमानों के पृथ्वीकायिक जीवों के भी उद्योत नामकर्म का उदय पाया जाता है।

सूर्य, चन्द्र के विमानों में स्थित जिनमंदिर का वर्णन

सभी ज्योतिर्देवों के विमानों में बीचोंबीच में एक-एक जिनमंदिर है और चारों ओर ज्योतिर्वासी देवों के निवास स्थान बने हैं।

विशेष[1]-प्रत्येक विमान की तटवेदी चार गोपुरों से युक्त है। उसके बीच में उत्तम वेदी सहित राजांगण है। राजांगण के ठीक बीच में रत्नमय दिव्य कूट है। उस कूट पर वेदी एवं चार तोरणद्वारों से युक्त जिन चैत्यालय (मंदिर) हैं। वे जिनमंदिर मोती एवं सुवर्ण की मालाओं से रमणीय और उत्तम वज्रमय किवाड़ों से संयुक्त दिव्य चन्द्रोपकों से सुशोभित हैं। वे जिनभवन देदीप्यमान रत्नदीपकों से सहित अष्ट महामंगल द्रव्यों से परिपूर्ण वंदनमाला, चमर, क्षुद्र घंटिकाओं के समूह से शोभायमान हैं। उन जिनभवनों में स्थान-स्थान पर विचित्र रत्नों से निर्मित नाट्य सभा, अभिषेक सभा एवं विविध प्रकार की क्रीड़ाशालायें बनी हुई हैं।

वे जिनभवन समुद्र के सदृश गंभीर शब्द करने वाले मर्दल, मृदंग, पटह आदि विविध प्रकार के दिव्य वादित्रों से नित्य शब्दायमान हैं। उन जिनभवनों में तीन छत्र, सिंहासन, भामण्डल और चामरों से युक्त जिनप्रतिमायें विराजमान हैं।

उन जिनेन्द्र प्रासादों में श्रीदेवी व श्रुतदेवी यक्षी एवं सर्वाण्ह व सानत्कुमार यक्षों की मूर्तियाँ भगवान के आजू-बाजू में शोभायमान होती हैं। सब देव गाढ़ भक्ति से जल, चंदन, तंदुल, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप और फलों से परिपूर्ण नित्य ही उनकी पूजा करते हैं।

चन्द्र के भवनों का वर्णन

इन जिनभवनों के चारों ओर समचतुष्कोण लम्बे और नाना प्रकार के विन्यास से रमणीय चन्द्र के प्रासाद होते हैं। इनमें कितने ही प्रासाद मर्कत वर्ण के, कितने ही कुंद पुष्प, चन्द्र, हार एवं बर्फ जैसे वर्ण वाले, कोई सुवर्ण सदृश वर्ण वाले व कोई मूंगा जैसे वर्ण वाले हैं।

इन भवनों में उपपाद मंदिर, स्नानगृह, भूषणगृह, मैथुनशाला, क्रीड़ाशाला, मंत्रशाला एवं आस्थान शालायें (सभा भवन) स्थित हैं। वे सब प्रासाद उत्तम परकोटों से सहित, विचित्र गोपुरों से संयुक्त, मणिमय तोरणों से रमणीय, विविध चित्रमयी दीवालों से युक्त, विचित्र-विचित्र उपवन वापिकाओं से शोभायमान,

1. तिलोयपण्णत्ति के आधार से।

सुवर्णमय विशाल खंभों से सहित और शयनासन आदि से परिपूर्ण हैं। वे दिव्य प्रासाद धूप की गंध से व्याप्त होते हुये अनुपम एवं शुद्ध रूप, रस, गंध और स्पर्श से विविध प्रकार के सुखों को देते हैं।

तथा इन भवनों में कूटों से विभूषित और प्रकाशमान रत्नकिरण-पंक्ति से संयुक्त 7-8 आदि भूमियाँ (मंजिल) शोभायमान होती है।

इन चन्द्र भवनों में सिंहासन पर चन्द्र देव रहते हैं। एक चन्द्र देव की 4 अग्रमहिषी (प्रधान देवियाँ) होती हैं। चन्द्राभा, सुसीमा, प्रभंकरा, अर्चिमालिनी–इन प्रत्येक देवी के 4-4 हजार परिवार देवियाँ हैं। अग्र देवियाँ विक्रिया से 4-4 हजार प्रमाण रूप बना सकती हैं। एक-एक चन्द्र के परिवार देव-प्रतीन्द्र (सूर्य), सामानिक, तनुरक्ष, तीनों परिषद्, सात अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्विषक, इस प्रकार 8 भेद हैं। इनमें प्रतीन्द्र 1 तथा सामानिक आदि संख्यात प्रमाण देव होते हैं। ये देवगण भगवान के कल्याणकों में आया करते हैं।

राजांगण के बाहर विविध प्रकार के उत्तम रत्नों से रचित और विचित्र विन्यासरूप विभूति से सहित परिवार देवों के प्रासाद होते हैं।

इन देवों की आयु का प्रमाण

चन्द्रदेव की उत्कृष्ट आयु – 1 पल्य और 1 लाख वर्ष की है।
सूर्यदेव की उत्कृष्ट आयु – 1 पल्य और 1 हजार वर्ष की है।
शुक्रदेव की उत्कृष्ट आयु – 1 पल्य और 100 वर्ष की है।
वृहस्पतिदेव की उत्कृष्ट आयु – 1 पल्य की है।
बुध, मंगल आदि की उत्कृष्ट आयु – आधा पल्य की है।
देवों की तथा ताराओं की उत्कृष्ट आयु – चौथाई पल्य की है।

तथा ज्योतिष्क देवांगनाओं की आयु अपने-अपने पति की आयु से आधा प्रमाण होती है।

सूर्य के बिम्ब का वर्णन

सूर्य के विमान 3147 मील के हैं एवं इससे आधे मोटाई लिये हैं तथा अन्य वर्णन उपर्युक्त प्रकार से चन्द्र के विमानों के सदृश ही है। सूर्य की देवियों के नाम–द्युतिश्रुति, प्रभंकरा, सूर्यप्रभा, अर्चिमालिनी ये चार अग्रमहिषी हैं। इन

एक-एक देवियों के चार-चार हजार परिवार देवियाँ हैं एवं एक-एक अग्रमहिषी विक्रिया से चार-चार हजार प्रमाणरूप बना सकती हैं।

बुध आदि ग्रहों का वर्णन

बुध के विमान स्वर्णमय चमकीले हैं। शीतल एवं मंद किरणों से युक्त हैं। कुछ कम 500 मील के विस्तार वाले हैं तथा उससे आधे मोटाई वाले हैं। पूर्वोक्त चन्द्र, सूर्य विमानों के सदृश ही इनके विमानों में भी जिनमंदिर, वेदी, प्रासाद आदि रचनायें हैं। देवी एवं परिवार देव आदि तथा वैभव उनसे कम अर्थात् अपने-अपने अनुरूप हैं। 2-2 हजार आभियोग्य जाति के देव इन विमानों को ढोते हैं।

शुक्र के विमान उत्तम चांदी से निर्मित 2500 किरणों से युक्त हैं। विमान का विस्तार 1000 मील का एवं बाहल्य (मोटाई) 500 मील की है। अन्य सभी वर्णन पूर्वोक्त प्रकार ही है।

वृहस्पति के विमान स्फटिक मणि से निर्मित सुन्दर मंद किरणों से युक्त कुछ कम 1000 मील विस्तृत एवं इससे आधे मोटाई वाले हैं। देवी एवं परिवार आदि का वर्णन अपने-अपने अनुरूप तथा बाकी मंदिर, प्रासाद आदि का वर्णन पूर्वोक्त ही है।

मंगल के विमान पद्मराग मणि से निर्मित लाल वर्ण वाले हैं। मंद किरणों से युक्त 500 मील विस्तृत, 250 मील बाहल्ययुक्त हैं। अन्य वर्णन पूर्ववत् है।

शनि के विमान स्वर्णमय, 500 मील विस्तृत एवं 250 मील मोटे हैं। अन्य वर्णन पूर्ववत् है।

नक्षत्रों के नगर विविध-विविध रत्नों से निर्मित रमणीय मंद किरणों से युक्त हैं। 1000 मील विस्तृत व 500 मील मोटे हैं। 4-4 हजार वाहन जाति के देव इनके विमानों को ढोते हैं। शेष वर्णन पूर्ववत् है।

ताराओं के विमान उत्तम-उत्तम रत्नों से निर्मित, मंद-मंद किरणों से युक्त 1000 मील विस्तृत, 500 मील मोटाई वाले हैं। इनके सबसे छोटे से छोटे विमान 250 मील विस्तृत एवं इससे आधे बाहल्य वाले हैं।

सूर्य का गमन क्षेत्र

पहले यह बताया जा चुका है कि जम्बूद्वीप 1 लाख योजन (100000 × 4000 = 400000000 मील) व्यास वाला है एवं वलयाकार (गोलाकार) है।

सूर्य का गमन क्षेत्र पृथ्वी तल से 800 योजन (800 × 4000 = 3200000 मील) ऊपर जाकर है।

वह इस जम्बूद्वीप के भीतर 180 योजन एवं लवण समुद्र में 330 योजन है अर्थात् समस्त गमन क्षेत्र 510 योजन या 2043147 मील है।

इतने प्रमाण गमन क्षेत्र में 184 गलियाँ हैं। इन गलियों में सूर्य क्रमशः एक-एक गली में संचार करते हैं। इस प्रकार जम्बूद्वीप में दो सूर्य तथा दो चन्द्रमा हैं।

इस 510 योजन के गमन क्षेत्र में सूर्य बिम्ब की एक-एक गली योजन प्रमाण वाली है। एक गली से दूसरी गली का अन्तराल 2-2 योजन का है।

अतः 184 गलियों का प्रमाण × 184 = 144 योजन हुआ। इस प्रमाण को 510 योजन गमन क्षेत्र में से घटाने पर 510 – 144 = 366 योजन कुल गलियों का अंतराल क्षेत्र रहा।

366 योजन में एक कम गलियों का अर्थात् गलियों के अन्तर 183 हैं उसका भाग देने से गलियों के अन्तर का प्रमाण 366 ÷ 183 = 2 योजन (8000 मील) का आता है। इस अन्तर में सूर्य की 1 गली का प्रमाण योजन को मिलाने से सूर्य के प्रतिदिन के गमन क्षेत्र का प्रमाण 2 योजन (11147 मील) का हो जाता है।

इन गलियों में एक-एक गली में दोनों सूर्य आमने-सामने रहते हुये एक दिन रात्रि (30 मुहूर्त) में एक गली के भ्रमण को पूरा करते हैं।

दोनों सूर्यों का आपस में अंतराल का प्रमाण

जब दोनों सूर्य अभ्यंतर गली में रहते हैं तब आमने-सामने रहने से पहले सूर्य से दूसरे सूर्य का आपस में अन्तर 99640 योजन (398460000 मील) का रहता है एवं प्रथम गली में स्थित सूर्य का मेरू से अन्तर 44820 योजन (179280000 मील) का रहता है।

अर्थात् 1 लाख योजन प्रमाण वाले जम्बूद्वीप में से जम्बूद्वीप सम्बन्धी, दोनों तरफ के सूर्य के गमन क्षेत्र को घटाने से 100000 – 180 × 2 = 99640 योजन आता है तथा इसमें मेरू पर्वत का विस्तार घटाकर शेष को आधा करने से मेरू

से प्रथम वीथी में स्थित सूर्य का अन्तर निकलता है। = 44820 योजन (179280000 मील) का होता है।

सूर्य की अभ्यंतर गली की परिधि का प्रमाण

अभ्यन्तर (प्रथम) गली की परिधि[1] का प्रमाण 315089 योजन (1260356000 मील) है। इस परिधि का चक्कर (भ्रमण) 2 सूर्य 1 दिन-रात में लगाते हैं। अर्थात् जब 1 सूर्य भरत क्षेत्र में रहता है तब दूसरा सूर्य ठीक सामने ऐरावत क्षेत्र में रहता है। जब 1 सूर्य पूर्व विदेह में रहता है, तब दूसरा पश्चिम विदेह में रहता है। इस प्रकार उपर्युक्त अंतर से (99640 योजन) गमन करते हुये आधी परिधि को 1 सूर्य एवं आधी को दूसरा सूर्य अर्थात् दोनों मिलकर 30 मुहूर्त (24 घण्टे) में 1 परिधि को पूर्ण करते हैं।

पहली गली से दूसरी गली की परिधि का प्रमाण $17\frac{38}{61}$ योजन (4300000 मील) अधिक है। अर्थात् 315089 + 17 = 315106 योजन होता है। इसी प्रकार आगे-आगे की वीथियों में क्रमशः 17 योजन अधिक-अधिक होता गया

$\frac{99640 - 10000}{2}$

है। यथा–315106 + 17 योजन = 315124 योजन प्रमाण तीसरी गली की परिधि है। इसी प्रकार बढ़ते-बढ़ते मध्य की 92वीं गली की परिधि का प्रमाण–316702 योजन (1266808000 मील) है। तथैव आगे वृद्धिंगत होते हुये अंतिम बाह्य गली की परिधि का प्रमाण–318314 योजन (1273256000 मील) है।

दिन रात्रि के विभाग का क्रम

प्रथम गली में सूर्य के रहने पर उस गली की परिधि (315089 योजन) के 10 भाग कीजिये। एक-एक गली में 2-2 सूर्य भ्रमण करते हैं। अतः एक सूर्य के गमन सम्बन्धी 5 भाग हुये। उन 5 भागों में से 2 भागों में अंधकार (रात्रि) एवं 3 भागों में प्रकाश (दिन) होता है। यथा–315089 ÷ 10 = 31508 योजन दसवां भाग (126035600 मील) प्रमाण हुआ। एक सूर्य सम्बन्धी 5 परिधि का आधा 315089 ÷ 2 = 15754 योजन है। उसमें दो भाग में अंधकार एवं 3 भागों में प्रकाश है।

---

1. गोल वस्तु के गोल घेरे के आकार को परिधि कहते हैं और वह व्यास से कुछ अधिक तिगुनी (22/7) होती है।

इसी प्रकार से क्रमशः आगे-आगे की वीथियों में प्रकाश घटते-घटते एवं रात्रि बढ़ते-बढ़ते मध्य की गली में दोनों ही (दिन-रात्रि) 2 -2 भाग में समानरूप से हो जाते हैं। पुनः आगे-आगे की गलियों में प्रकाश घटते-घटते तथा अंधकार बढ़ते-बढ़ते अंतिम बाह्य गली में सूर्य के पहुँचने पर 3 भागों में रात्रि एवं 2 भागों में दिन हो जाता है अर्थात् प्रथम गली में सूर्य के रहने से दिन बड़ा एवं अंतिम गली में रहने से छोटा होता है।

इस प्रकार सूर्य के गमन के अनुसार ही भरत-ऐरावत क्षेत्रों में और पूर्व-पश्चिम विदेह क्षेत्रों में दिन-रात्रि का विभाग होता रहता है।

छोटे-बड़े दिन होने का विशेष स्पष्टीकरण

श्रावण मास में जब सूर्य पहली गली में रहता है। उस समय दिन 18 मुहूर्त[1] (14 घंटे 24 मिनट) का एवं रात्रि 12 मुहूर्त (9 घंटे 36 मिनट) की होती है।

पुनः दिन घटने का क्रम–

जब सूर्य प्रथम गली का परिभ्रमण पूर्ण करके दो योजन प्रमाण अंतराल के मार्ग को उल्लंघन कर दूसरी गली में जाता है तब दूसरे दिन दूसरी गली में जाने पर परिधि का प्रमाण बढ़ जाने से एवं मेरू से सूर्य का अंतराल बढ़ जाने से दो मुहूर्त का 61वाँ भाग (1 मिनट) दिन घट जाता है एवं रात्रि बढ़ जाती है। इसी तरह प्रतिदिन दो मुहूर्त के 61वें भाग प्रमाण घटते-घटते मध्यम गली में सूर्य के पहुँचने पर 15 मुहूर्त (12 घंटे) का दिन एवं 15 मुहूर्त की रात्रि हो जाती है।

तथैव प्रतिदिन 2 मुहूर्त के 61वें भाग घटते-घटते अंतिम गली में पहुँचने पर 12 मुहूर्त (9 घंटे 36 मिनट) का दिन एवं 18 मुहूर्त (14 घंटे 24 मिनट) की रात्रि हो जाती है।

जब सूर्य कर्क राशि में आता है तब अभ्यंतर गली में भ्रमण करता है और जब सूर्य मकर राशि में आता है तब बाह्य गली में भ्रमण करता है।

विशेष–श्रावण मास में जब सूर्य प्रथम गली में रहता है तब 18 मुहूर्त का दिन एवं 12 मुहूर्त की रात्रि होती है। वैशाख एवं कार्तिक मास में जब सूर्य बीचों-बीच

1. 48 मिनट का 1 मुहूर्त होता है अतः 18 मुहूर्त को 48 मिनट से गुणा करके 60 मिनट का भाग देने पर–18 × 48 = 864 मिनट ÷ 60 = 14 अर्थात् 14 घण्टे 24 मिनट होते हैं।

की गली में रहता है तब दिन एवं रात्रि 15-15 मुहूर्त (12 घण्टे) के होते हैं।

तथैव माघ मास में सूर्य जब अंतिम गली में रहता है तब 12 मुहूर्त का दिन एवं 18 मुहूर्त की रात्रि होती है।

दक्षिणायन एवं उत्तरायण

श्रावण कृष्णा प्रतिपदा के दिन जब सूर्य अभ्यंतर मार्ग (गली) में रहता है, तब दक्षिणायन का प्रारम्भ होता है एवं जब 184वीं (अंतिम गली) में पहुँचता है तब उत्तरायण का प्रारम्भ होता है। अतएव 6 महीने में दक्षिणायन एवं 6 महीने में उत्तरायण होता है।

जब दोनों ही सूर्य अंतिम गली में पहुँचते हैं तब दोनों सूर्यों का परस्पर में अन्तर अर्थात् एक सूर्य से दूसरे सूर्य के बीच का अंतराल–100660 योजन (402640000 मील) का रहता है। अर्थात् जम्बूद्वीप 1 लाख योजन है तथा लवण समुद्र में सूर्य का गमन क्षेत्र 330 योजन है उसे दोनों तरफ का लेकर मिलाने पर 100000 + 330 + 330 = 100660 योजन होता है। अंतिम गली से अंतिम गली तक यही अंतर है।

एक मुहूर्त में सूर्य के गमन का प्रमाण

जब सूर्य प्रथम गली में रहता है तब एक मुहूर्त में 5251 योजन (210059433 मील) गमन करता है। अर्थात्–प्रथम गली की परिधि का प्रमाण 315089 योजन है। उनमें 60 मुहूर्त का भाग देने से उपर्युक्त संख्या आती है क्योंकि 2 सूर्यों के द्वारा 30 मुहूर्त में 1 परिधि पूर्ण होती है। अतः 1 परिधि के भ्रमण में कुल 60 मुहूर्त लगते हैं। अतएव 60 का भाग दिया जाता है।

उसी प्रकार जब सूर्य बाह्य गली में रहता है तब बाह्य परिधि में 60 का भाग देने से–318314 ÷ 60 = 5305 योजन (21220933 मील) प्रमाण 1 मुहूर्त में गमन करता है।

एक मिनट में सूर्य का गमन

एक मिनट में सूर्य की गति 447623 मील प्रमाण है। अर्थात् 1 मुहूर्त की गति में 48 मिनट का भाग देने से 1 मिनट की गति का प्रमाण आता है। यथा–21220933 ÷ 48 = 447623 योजन।

अधिक दिन एवं मास का क्रम

जब सूर्य एक पथ से दूसरे पथ में प्रवेश करता है तब मध्य के अन्तराल 2 योजन (8000 मील) को पार करते हुये ही जाता है। अतएव इस निमित्त से 1 दिन में 1 मुहूर्त की वृद्धि होने से 1 मास में 30 मुहूर्त (1 अहोरात्र) की वृद्धि होती है। अर्थात् यदि 1 पथ के लांघने में दिन का इकसठवाँ भाग उपलब्ध होता है तो 184 पथों के 183 अंतरालों को लांघने में कितना समय लगेगा– × 183 ÷ 1 = 3 दिन तथा 2 सूर्य सम्बन्धी 6 दिन हुये।

इस प्रकार प्रतिदिन 1 मुहूर्त (48 मिनट) की वृद्धि होने से 1 मास में 1 दिन तथा 1 वर्ष में 12 दिन की वृद्धि हुई एवं इसी क्रम से 2 वर्ष में 24 दिन तथा ढाई वर्ष में 30 दिन (1 मास) की वृद्धि होती है तथा 5 वर्ष (1 युग) में 2 मास अधिक हो जाते हैं।

सूर्य के ताप का चारों तरफ फैलने का क्रम

सूर्य का ताप मेरू पर्वत के मध्य भाग से लेकर लवण समुद्र के छठे भाग तक फैलता है। अर्थात्–लवण समुद्र का विस्तार 200000 योजन है उसमें 6 का भाग देकर 1 लाख योजन जम्बूद्वीप का आधा 50000 मिलाने से $\left(\frac{200000}{6}+50000\right)$

= 83333 $\frac{1}{3}$ योजन (333333333 मील) तक प्रकाश फैलता है। सूर्य का प्रकाश नीचे की ओर चित्रा पृथ्वी की जड़ तक अर्थात् चित्रा पृथ्वी से एक हजार योजन नीचे तक एवं ऊपर सूर्य बिम्ब 800 योजन पर है। अतः 1000 + 800 = 1800 योजन (7200000 मील) तक फैलता है और ऊपर की ओर 100 योजन (400000 मील) तक फैलता है।

लवण समुद्र के छठे भाग की परिधि

लवण समुद्र के छठे भाग की परिधि का प्रमाण 527046 योजन (2128184000 मील) है।

सूर्य के प्रथम गली में रहने पर ताप - तम का प्रमाण

जब सूर्य अभ्यन्तर गली में रहता है उस समय लवण समुद्र के छठे भाग में

ताप की परिधि 158114 योजन (632459200 मील) है। एवं तम की परिधि का प्रमाण 105409 योजन (421636800 मील) है तथा बाह्य गली में ताप की परिधि 95494 योजन है और तप की परिधि 63662 योजन प्रमाण है।

उसी प्रकार मध्यम गली में ताप की परिधि 95010 योजन एवं तम की परिधि 63340 योजन है।

मेरू पर्वत की परिधि में 9486 योजन का प्रकाश और 6324 योजन का अन्धेरा होता है।

सूर्य के मध्यम गली में रहने पर ताप-तम का प्रमाण

जब सूर्य मध्यम गली[1] में गमन करता है उस समय ताप और तम की परिधि समान होती है। अर्थात्–

उस समय लवण समुद्र के छठे भाग में ताप और तम की परिधि 131761 योजन समान रहती है।

इसी समय बाह्य गली में ताप एवं तम की परिधि 79578 योजन की समान होती है।

इसी समय अभ्यंतर गली में ताप और तम की परिधि 78772 योजन की होती है एवं मेरू की परिधि ताप तथा तम की 7905 योजन प्रमाण होती है।

सूर्य के अंतिम गली में रहने पर ताप-तम का प्रमाण

सूर्य जब अंतिम गली में गमन करता है उस समय लवण समुद्र के छठे भाग में ताप की परिधि 105409 योजन की एवं तम की परिधि 158113 योजन की होती है।

उसी समय मध्यम गली में ताप की परिधि 63340 योजन एवं तम की परिधि 95010 योजन की होती है।

उसी समय अभ्यन्तर गली में ताप की परिधि 63017 योजन एवं तम की

1. तिलोयपण्णत्ति शास्त्र में प्रत्येक गली में सूर्य के स्थित रहने पर ताप-तम का प्रमाण निकाला है। (विशेष वहाँ देखिये)

परिधि 94526 योजन की होती है।

एवं उसी समय मेरू की परिधि में ताप 6324 योजन और तम 9486 योजन प्रमाण होता है।

चक्रवर्ती के द्वारा सूर्य के जिनबिम्ब का दर्शन

जब सूर्य पहली गली में आता है तब अयोध्या नगरी के भीतर अपने भवन के ऊपर स्थित चक्रवर्ती सूर्य विमान में स्थित जिनबिम्ब का दर्शन करते हैं। इस समय सूर्य अभ्यंतर गली की परिधि 315089 योजन को 60 मुहूर्त में पूरा करता है। इस गली में सूर्य निषध पर्वत पर उदित होता है वहाँ से उसे अयोध्या नगरी के ऊपर आने में 9 मुहूर्त लगते हैं। अब जब वह 315089 योजन प्रमाण उस वीथी को 60 मुहूर्त में पूर्ण करता है तब वह 9 मुहूर्त में कितने क्षेत्र को पूरा करेगा। इस प्रकार त्रैराशिक करने पर– × 9 = 47263 योजन अर्थात् 1890534000 मील होता है।

पक्ष-मास-वर्ष आदि का प्रमाण

जितने काल में एक परमाणु आकाश के 1 प्रदेश को लांघता है उतने काल को 1 समय कहते हैं। ऐसे असंख्यात समयों की 1 आवली होती है। अर्थात्–

असंख्यात समयों की 1 आवली
संख्यात आवलियों का 1 उच्छ्वास
7 उच्छ्वासों का 1 स्तोक
7 स्तोकों का 1 लव
38 लवों की 1 नाली[1]
2 घटिका का 1 मुहूर्त होता है।

इसी प्रकार 3773 उच्छ्वासों का एक मुहूर्त होता है एवं 30 मुहूर्त[2] का 1 दिन-रात होता है अथवा 24 घण्टे का 1 दिन-रात होता है।

15 दिन का 1 पक्ष 2 पक्ष का 1 मास

1. नाली अर्थात् घटिका। 24 मिनट की 1 घड़ी होती है उसे ही नाली या घटिका कहते हैं।
2. 48 मिनट का 1 मुहूर्त होता है इसलिये 30 मुहूर्त के 24 घंटे होते हैं।

2 मास की 1 ऋतु 3 ऋतुओं का 1 अयन
2 अयन का 1 वर्ष 5 वर्षों का 1 युग होता है।

प्रति 5 वर्ष के पश्चात् सूर्य श्रावण कृष्णा 1 को पहली गली में आता है।

दक्षिणायन एवं उत्तरायण का क्रम

जब सूर्य श्रावण कृष्णा 1 के दिन प्रथम गली में रहता है तब दक्षिणायन होता है एवं उसी वर्ष माघ कृष्णा 7 को उत्तरायन है। तथैव दूसरी वर्ष–

श्रावण कृष्णा 13 को दक्षिणायन एवं माघ शुक्ला 4 को उत्तरायन होता है। तीसरे वर्ष–श्रावण शुक्ला 10 को दक्षिणायन, माघ कृष्णा 1 को उत्तरायन। चौथे वर्ष–श्रावण कृष्णा 7 को दक्षिणायन, माघ कृष्णा 13 को उत्तरायन। पांचवें वर्ष–श्रावण शुक्ला 4 को दक्षिणायन, माघ शुक्ला 10 को उत्तरायन होता है।

पुनः छठे वर्ष से उपरोक्त व्यवस्था प्रारम्भ हो जाती है अर्थात्–पुनः श्रावण कृष्णा 1 के दिन दक्षिणायन एवं माघ कृष्णा 7 को उत्तरायन होता है। इस प्रकार 5 वर्ष में एक युग समाप्त होता है और छठे वर्ष से नया युग प्रारम्भ होता है। इस प्रकार प्रथम वीथी से दक्षिणायन एवं अंतिम वीथी से उत्तरायन होता है।

315089
0160

सूर्य के १८४ गलियों के उदय स्थान

सूर्य के उदय निषध और नील पर्वत पर 63, हरि और रम्यक क्षेत्रों में 2 तथा लवण समुद्र में 119 हैं। 63 + 2 + 119 = 184 हैं। इस प्रकार 184 उदय स्थान होते हैं।

चन्द्रमा का विमान, गमन क्षेत्र एवं गलियाँ

चन्द्र का विमान योजन (3672 मील) व्यास का है। सूर्य के समान चन्द्रमा का भी गमन क्षेत्र 510 योजन है। इस गमन क्षेत्र में चन्द्र की 15 गलियाँ हैं। इनमें वह प्रतिदिन क्रमशः एक-एक गली में गमन करता है। चन्द्र बिम्ब के प्रमाण योजन की ही एक-एक गली हैं अतः समस्त गमन क्षेत्र में चन्द्र बिम्ब प्रमाण 15 गलियों को घटाने से एवं शेष में 1 कम (14) गलियों का भाग देने से एक चन्द्र गली से दूसरी चन्द्र गली के अन्तर का प्रमाण प्राप्त होता है। यथा–

510 – × 15 = 510 – 13 = 497 योजन

इसमें 14 का भाग देने से–497 ÷ 14 = 35 योजन (142004 मील) प्रमाण एक चन्द्र गली से दूसरी चन्द्र गली का अन्तराल है।

इसी अन्तर में चन्द्र बिम्ब के प्रमाण को जोड़ देने से चन्द्र के प्रतिदिन के गमन क्षेत्र का प्रमाण आता है। यथा–35 + = 36 योजन अर्थात् 145653 मील प्रतिदिन गमन करता है।

इस प्रकार प्रतिदिन दोनों ही चन्द्रमा 1-1 गलियों में आमने-सामने रहते हुये एक-एक गली का परिभ्रमण पूरा करते हैं।

चन्द्र को एक गली के पूरा करने का काल

अपनी गलियों में से किसी भी एक गली में संचार करते हुये चन्द्र को उस परिधि को पूरा करने में 62 मुहूर्त प्रमाण काल लगता है। अर्थात् एक चन्द्र कुछ कम 25 घण्टे में 1 गली का भ्रमण करता है। सूर्य को 1 गली के भ्रमण में 24 घण्टे एवं चन्द्र को 1 गली के भ्रमण में कुछ कम 25 घण्टे लगते हैं।

चन्द्र का एक मुहूर्त में गमन क्षेत्र

चन्द्रमा की प्रथम वीथी (गली) 315089 योजन की है। उसमें एक गली को पूरा करने का काल 62 मुहूर्त का भाग देने से 1 मुहूर्त की गति का प्रमाण आता है। यथा–315089 ÷ 62 = 5073 योजन एवं 4000 से गुणा करके इसका मील बनाने पर–20294256 मील प्रमाण एक मुहूर्त (48 मिनट) में चन्द्रमा गमन करता है।

एक मिनट में चन्द्रमा का गमन क्षेत्र

इस मुहूर्त प्रमाण गमन क्षेत्र के मील में 48 मिनट का भाग देने से 1 मिनट की गति का प्रमाण आ जाता है। यथा–20294256 ÷ 48 = 422797 मील होता है। अर्थात् चन्द्रमा 1 मिनट में इतने मील गमन करता है।

द्वितीयादि गलियों में स्थित चन्द्रमा का गमन क्षेत्र

प्रथम गली में स्थित चन्द्र की 1 मुहूर्त में गति 5073 योजन है। चन्द्र

जब दूसरी गली में पहुँचता है तब इसी प्रमाण में 3 योजन और मिला देने से द्वितीय गली में स्थित चन्द्र के 1 मुहूर्त की गति का प्रमाण होता है। इसी प्रकार आगे-आगे की 13 गलियों तक भी 3 योजन अधिक-अधिक करने से मुहूर्त प्रमाण गति का प्रमाण आता है। मध्यम गली में चन्द्र के पहुँचने पर 1 मुहूर्त की गति का प्रमाण 5100 योजन है एवं बाह्य गली में चन्द्र के पहुँचने पर 1 मुहूर्त की गति का प्रमाण 5126 योजन (20504000 मील) होता है।

विशेष–510 योजन के क्षेत्र में ही सूर्य की 184 गलियाँ एवं चन्द्र की 15 गलियाँ हैं। अतएव सूर्य की गलियों का अन्तराल दो-दो योजन का एवं चन्द्र की प्रत्येक गलियों का अन्तराल 35 योजन का है।

सूर्य 1 गली को 60 मुहूर्त में पूरी करते हैं परन्तु चन्द्र 1 गली को 62 मुहूर्त में पूरा करते हैं।

कृष्ण पक्ष-शुक्ल पक्ष का क्रम

जब यहाँ मनुष्य लोक में चन्द्र बिम्ब पूर्ण दिखता है। उस दिवस का नाम पूर्णिमा है। राहु ग्रह चन्द्र विमान के नीचे गमन करता है और केतु ग्रह सूर्य विमान के नीचे गमन करता है। राहु और केतु के विमानों के ध्वजा दण्ड के ऊपर चार प्रमाणांगुल (2000 उत्सेधांगुल) प्रमाण ऊपर जाकर चन्द्रमा और सूर्य के विमान हैं। राहु और चन्द्रमा अपनी-अपनी गलियों को लांघकर क्रम से जम्बूद्वीप की आग्नेय और वायव्य दिशा से अगली-अगली गली में प्रवेश करते हैं अर्थात् पहली से दूसरी, दूसरी से तीसरी आदि गली में प्रवेश करते हैं।

पहली से दूसरी गली में प्रवेश करने पर चन्द्र मण्डल के 16 भागों में से 1 भाग राहु के गमन विशेष से आच्छादित होता हुआ दिखाई देता है।

इस प्रकार राहु प्रतिदिन एक-एक मार्ग में चन्द्र बिम्ब की 15 दिन तक एक-एक कलाओं को ढकता रहता है। इस प्रकार राहु बिम्ब के द्वारा चन्द्र की 1-1 कला का आवरण करने पर जिस मार्ग में चन्द्र की 1 ही कला दिखती है वह अमावस्या का दिन होता है।

फिर वह राहु प्रतिपदा के दिन से प्रत्येक गली में 1-1 कला को छोड़ते हुये पूर्णिमा को पन्द्रहों कलाओं को छोड़ देता है तब चन्द्र बिम्ब पूर्ण दीखने लगता है। उसे ही

पूर्णिमा कहते हैं। इस प्रकार कृष्ण पक्ष एवं शुक्ल पक्ष का विभाग हो जाता है।

चन्द्रग्रहण-सूर्यग्रहण का क्रम

इस प्रकार 6 मास में पूर्णिमा के दिन चन्द्र विमान पूर्ण आच्छादित हो जाता है उसे चन्द्रग्रहण कहते हैं तथैव छह मास में सूर्य के विमान को अमावस्या के दिन केतु का विमान ढक देता है उसे सूर्य ग्रहण कहते हैं।

विशेष–ग्रहण के समय दीक्षा, विवाह आदि शुभ कार्य वर्जित माने हैं तथा सिद्धान्त ग्रन्थों के स्वाध्याय का भी निषेध किया है।

सूर्य चन्द्रादिकों का तीव्र-मन्द गमन

सबसे मन्द गमन चन्द्रमा का है। उससे शीघ्र गमन सूर्य का है। उससे तेज गमन ग्रहों का, उससे तीव्र गमन नक्षत्रों का एवं सबसे तीव्र गमन ताराओं का है।

एक चन्द्र का परिवार

इन ज्योतिषी देवों में चन्द्रमा इन्द्र है तथा सूर्य प्रतीन्द्र है। अतः एक चन्द्र (इन्द्र) के–1 सूर्य (प्रतीन्द्र), 88 ग्रह, 28 नक्षत्र, 66 हजार 975 कोड़ाकोड़ी तारे ये सब परिवार देव हैं।

कोड़ाकोड़ी का प्रमाण

1 करोड़ को 1 करोड़ से गुणा करने पर कोड़ाकोड़ी संख्या आती है।

10000000 × 10000000 = 10000000000000

एक तारे से दूसरे तारे का अन्तर

एक तारे से दूसरे तारे का जघन्य अन्तर 142 मील अर्थात् महाकोश है। इसका लघु कोश 500 गुणा होने से हुआ, उसका मील बनाने पर × 2 = 142 हुआ।

मध्यम अन्तर–50 योजन (20000 मील) का है एवं उत्कृष्ट अन्तर–100 योजन (400000 मील) का है।

जम्बूद्वीप सम्बन्धी तारे

जम्बूद्वीप में दो चन्द्र सम्बन्धी परिवार तारे 133 हजार 950 कोड़ाकोड़ी प्रमाण हैं। उनका विस्तार जम्बूद्वीप के 7 क्षेत्र एवं 6 पर्वतों में है देखिये चार्ट–

क्षेत्र एवं पर्वत	तारों की संख्या कोड़ाकोड़ी से
भरत क्षेत्र में	705 कोड़ाकोड़ी तारे
हिमवन पर्वत में	1410 कोड़ाकोड़ी तारे
हैमवत क्षेत्र में	2820 कोड़ाकोड़ी तारे
महाहिमवान पर्वत में	5640 कोड़ाकोड़ी तारे
हरि क्षेत्र में	11280 कोड़ाकोड़ी तारे
निषध पर्वत में	22560 कोड़ाकोड़ी तारे
विदेह क्षेत्र में	45120 कोड़ाकोड़ी तारे
नील पर्वत में	22560 कोड़ाकोड़ी तारे
रम्यक क्षेत्र में	11280 कोड़ाकोड़ी तारे
रुक्मि पर्वत में	5640 कोड़ाकोड़ी तारे
हैरण्यवत क्षेत्र में	2820 कोड़ाकोड़ी तारे
शिखरी पर्वत में	1410 कोड़ाकोड़ी तारे
ऐरावत क्षेत्र में	705 कोड़ाकोड़ी तारे

कुल जोड़ 133950 कोड़ाकोड़ी हैं। इस प्रकार 2 चन्द्र सम्बन्धी सम्पूर्ण ताराओं का कुल जोड़ 13395000000000000000 प्रमाण है।

ध्रुव ताराओं का प्रमाण

जो अपने स्थान पर ही रहते हैं। प्रदक्षिण रूप से परिभ्रमण नहीं करते हैं उन्हें ध्रुव तारे कहते हैं।

वे जम्बूद्वीप में 36, लवण समुद्र में 139, धातकी खण्ड में 1010, कालोदधि समुद्र में 41120 एवं पुष्करार्ध द्वीप में 53230 हैं। ढाई द्वीप के आगे सभी ज्योतिष्क देव एवं तारे के विमान स्थिर ही हैं।

ढाई द्वीप एवं दो समुद्र सम्बन्धी सूर्य चन्द्रादिकों का प्रमाण

द्वीप-समुद्र में	चन्द्रमा	सूर्य
जम्बूद्वीप	2	2
लवण समुद्र	4	4
धातकीखण्ड द्वीप	12	12
कालोदधि समुद्र	42	42
पुष्करार्द्ध द्वीप	72	72

नोट–सर्वत्र ही 1-1 चन्द्र, 1-1 सूर्य (प्रतीन्द्र), 88-88 ग्रह, 28-28 नक्षत्र एवं 66 हजार 975 कोड़ाकोड़ी तारे हैं। इतने प्रमाण परिवार देव समझना चाहिये।

इस ढाई द्वीप के आगे-आगे असंख्यात द्वीप एवं समुद्र पर्यन्त दूने-दूने चन्द्रमा एवं दूने-दूने सूर्य होते गये हैं।

मानुषोत्तर पर्वत के पूर्व के ही ज्योतिष्क देवों का भ्रमण

मानुषोत्तर पर्वत से इधर-उधर के ही ज्योतिर्वासी देवगण हमेशा ही मेरू की प्रदक्षिणा देते हुए गमन करते रहते हैं और इन्हीं के गमन के क्रम से दिन, रात्रि, पक्ष, मास, संवत्सर आदि का विभागरूप व्यवहार काल जाना जाता है।

२८ नक्षत्रों के नाम

1. कृत्तिका, 2. रोहिणी, 3. मृगशीर्षा, 4. आर्द्रा, 5. पुनर्वसू, 6. पुष्य, 7. आश्लेषा, 8. मघा, 9. पूर्वाफाल्गुनी, 10. उत्तराफाल्गुनी, 11. हस्त, 12. चित्रा, 13. स्वाति, 14. विशाखा, 15. अनुराधा, 16. ज्येष्ठा, 17. मूल, 18. पूर्वाषाढ़ा, 19. उत्तराषाढ़ा, 20. अभिजित, 21. श्रवण, 22. घनिष्ठा, 23. शतभिषक, 24. पूर्वाभाद्रपदा, 25. उत्तराभाद्रपदा, 26. रेवती, 27. अश्विनी, 28. भरिणी।

नक्षत्रों की गलियाँ

चन्द्रमा की 15 गलियाँ हैं। उनके मध्य में 28 नक्षत्रों की 8 ही गलियाँ हैं।

चन्द्र की प्रथम गली में–अभिजित, श्रवण, घनिष्ठा, शतभिषज्, पूर्वाभाद्रपदा, रेवती, उत्तराभाद्रपदा, अश्विनी, भरिणी, स्वाति, पूर्वाफाल्गुनी एवं उत्तरा फाल्गुनी ये 12 नक्षत्र संचार करते हैं।

तृतीय गली में–पुनर्वसू एवं मघा संचार करते हैं।

छठी गली में–कृत्तिका का गमन होता है।

सातवीं गली में–रोहिणी तथा चित्रा का गमन होता है।

आठवीं गली में–विशाखा,

दशमी गली में–अनुराधा,

ग्यारहवीं गली में–ज्येष्ठा

एवं पन्द्रहवीं गली में–हस्त, मूल, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, मृगशीर्षा, आर्द्रा, पुण्य तथा आश्लेषा नामक शेष 8 नक्षत्र संचार करते हैं। ये नक्षत्र क्रमशः अपनी-अपनी गली में ही भ्रमण करते हैं।

सूर्य-चन्द्र के समान अन्य-अन्य गलियों में भ्रमण नहीं करते हैं।

नक्षत्रों की एक मुहूर्त में गति का प्रमाण

ये नक्षत्र अपनी एक गली को 59 मुहूर्त में पूरी करते हैं। अतः प्रथम परिधि 315089 में 59 का भाग देने से 1 मुहूर्त के गमन क्षेत्र का प्रमाण आ जाता है। यथा–315089 ÷ 59 मुहूर्त = 5265 योजन पर्यन्त पहली गली में रहने वाले प्रत्येक नक्षत्र 1 मुहूर्त में गमन करते हैं।

आगे-आगे की गलियों की परिधि में उपर्युक्त इस पूर्ण परिधि के गमन क्षेत्र (59 मुहूर्त) का भाग देने से मुहूर्त प्रमाण गमन क्षेत्र का प्रमाण आ जाता है।

विशेष–चन्द्र को 1 परिधि को पूर्ण करने में 62 मुहूर्त प्रमाण काल लगता है। उसी वीथी की परिधि को भ्रमण द्वारा पूर्ण करने में सूर्य को 60 मुहूर्त लगते हैं तथा नक्षत्र गणों को उसी परिधि को पूर्ण करने में 59 मुहूर्त प्रमाण काल लगता है क्योंकि चन्द्रमा मंदगामी है। चन्द्रमा से तेज गति सूर्य की है। सूर्य से अधिक तीव्र गति ग्रहों की है। ग्रहों से भी तीव्र गति नक्षत्रों की एवं इन सबसे तीव्र गति तारागणों की मानी है।

लवण समुद्र का वर्णन

एक लाख योजन व्यास वाले इस जम्बूद्वीप को घेरे हुये वलयाकार 2 लाख

योजन व्यास वाला लवण समुद्र है। उसका पानी अनाज के ढेर के समान शिखाऊ ऊँचा उठा हुआ है। बीच में गहराई 1000 योजन की है। समतल से जल की ऊँचाई अमावस्या के दिन 11000 योजन की रहती है तथा शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से बढ़ते-बढ़ते ऊँचाई पूर्णिमा के दिन 16000 योजन की हो जाती है। पुनः कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा से घटते-घटते ऊँचाई क्रमशः अमावस्या के दिन 11000 योजन की रह जाती है।

तट से (किनारे से) 95 योजन आगे जाने पर गहराई एक योजन की है। इस प्रकार क्रमशः 95-95 योजन बढ़ते जाने पर 1-1 योजन की गहराई अधिक-अधिक बढ़ती जाती है। इस प्रकार 95000 योजन जाने पर गहराई 1000 योजन की हो जाती है। यही क्रम उस तट से भी जानना चाहिये। इस प्रकार इस लवण समुद्र के बीचों बीच में 10000 योजन तक गहराई 1000 योजन की समान है।

लवण समुद्र में ज्योतिष्क देवों का गमन

लवण समुद्र के ज्योतिर्वासी देवों के विमान पानी के मध्य में होकर ही घूमते रहते हैं क्योंकि लवण समुद्र के पानी की सतह ज्योतिषी देवों के गमन मार्ग की सतह से बहुत ऊँची है। अर्थात् विमान 790 से 900 योजन की ऊँचाई तक ही गमन करते हैं और पानी की सतह 11000 योजन ऊँची है।

जम्बूद्वीप की तटवर्ती वेदी की ऊँचाई 8 योजन (32000 मील) है तथा चौड़ाई 4 योजन (16000) मील है। पानी की सतह 11000 योजन से बढ़ते-बढ़ते 16000 योजन तक हो जाती है।

इस प्रकार समुद्र का जल तट से ऊँचा होने पर भी अपनी मर्यादा में ही रहता है। कभी भी तट का उल्लंघन करके बाहर नहीं आता है। इसलिये मर्यादा का उल्लंघन न करने वालों को समुद्र की उपमा दी जाती है।

आर्यखण्ड में जो समुद्र हैं वे उपसमुद्र हैं यह लवण समुद्र नहीं हैं और आजकल जिसे सिलोन अर्थात् लंका कहते हैं यह रावण की लंका नहीं है। रावण की लंका तो लवण समुद्र में है। इस लवण समुद्र में गौतमद्वीप, हंसद्वीप, वानर-द्वीप, लंकाद्वीप आदि अनेक द्वीप अनादि निधन बने हुये हैं।

अन्तर्द्वीपों का वर्णन

इस लवण समुद्र के दोनों तटों पर 24 अन्तर्द्वीप हैं। (चार दिशाओं के 4 द्वीप, 4 विदिशाओं के 4 द्वीप, दिशा-विदिशा की 8 अन्तरालों के 8 द्वीप, हिमवन और शिखरी पर्वत के दोनों तटों के 4 और भरत, ऐरावत के दोनों विजयार्द्धों के दोनों तटों के 4 इस प्रकार–4 + 4 + 8 + 4 + 4 = 24 हुये।)

ये 24 अन्तर्द्वीप लवण समुद्र के इस तटवर्ती हैं एवं उस तट के भी 24 तथा कालोदधि समुद्र के उभयतट के 48, सभी मिलकर 96 अन्तर्द्वीप कहलाते हैं। इन्हें ही कुभोग भूमि कहते हैं।

कुभोग भूमियाँ मनुष्य का वर्णन

इन द्वीपों में रहने वाले मनुष्य, कुभोग भूमियाँ कहलाते हैं। इनकी आयु असंख्यात वर्षों की होती है।

पूर्व दिशा में रहने वाले मनुष्य – एक पैर वाले होते हैं।
पश्चिम दिशा में रहने वाले मनुष्य – पूंछ वाले होते हैं।
दक्षिण दिशा में रहने वाले मनुष्य – सींग वाले होते हैं।
उत्तर दिशा में रहने वाले मनुष्य – गूंगे होते हैं।

एवं विदिशा आदि सम्बन्धी सभी कुभोग भूमियाँ कुत्सित रूप वाले ही होते हैं।

ये मनुष्य सुभोग भूमिवत् युगल ही जन्म लेते हैं और युगल ही मरते हैं। इनको शरीर सम्बन्धी कोई कष्ट नहीं होता है। कोई-कोई वहाँ की मधुर मिट्टी का भक्षण करते हैं तथा अन्य मनुष्य वहाँ के वृक्षों के फल-फूल आदि का भक्षण करते हैं। उनका कुरूप होना कुपात्र दान का फल है।

लवण समुद्र के ज्योतिष्क देवों का गमन क्षेत्र

लवण समुद्र में 4 सूर्य एवं 4 चन्द्रमा हैं। जम्बूद्वीप के समान ही 510 योजन प्रमाण वाले वहाँ पर दो गमन क्षेत्र हैं। दो-दो सूर्य एक-एक गमन क्षेत्र में भ्रमण करते हैं।

यहाँ के समान ही वहाँ पर 510 योजन में 184 गलियाँ हैं। उन गलियों में क्रम से भ्रमण करते हुये सतत ही मेरू की प्रदक्षिणा के क्रम से ही भ्रमण करते हैं।

जम्बूद्वीप की वेदी से लवण समुद्र में 49999 योजन (19,99,98,426 मील) जाने पर प्रथम गमन क्षेत्र की पहली परिधि आती है।

इस पहली गली से 99999 योजन (399996852 मील) जाने पर दूसरे गमन क्षेत्र की पहली गली आती है। यही एक सूर्य से दूसरे सर्य के बीच का अंतराल है। लवण समुद्र के बाह्य तट से 49999 योजन इधर (भीतर) ही दूसरे गमन क्षेत्र की प्रथम गली आती है। अर्थात्–

जम्बूद्वीप की वेदी से प्रथम सूर्य का अन्तर 49999 योजन है तथा सूर्य का बिम्ब योजन का है। इस सूर्य की प्रथम गली से दूसरे सूर्य की प्रथम गली का अन्तर 99999 योजन है एवं यहाँ भी प्रथम गली में सूर्य बिम्ब का विस्तार योजन है। इसके आगे लवण समुद्र की अंतिम वेदी तक 49999 योजन है। यथा–49999 + + 9999 + + 49999 = 200000। ऐसे दो लाख योजन विस्तार वाला लवण समुद्र है। 1-1 गमन क्षेत्र में सूर्य की 184-184 गलियाँ एवं चन्द्रमा की 15-15 गलियाँ हैं। प्रत्येक सूर्य आमने-सामने रहते हुये 60 मुहूर्त में 1-1 परिधि को पूरा करते हैं। जम्बूद्वीप के समान ही वहाँ भी दक्षिणायन एवं उत्तरायन की व्यवस्था है। अन्तर केवल इतना ही है कि–जम्बूद्वीप की अपेक्षा लवण समुद्र की गलियों की परिधियाँ अधिक-अधिक बड़ी हैं। अतः सूर्य चन्द्रादिकों का मुहूर्त प्रमाण गमन क्षेत्र भी अधिक-अधिक होता गया है।

धातकीखण्ड के सूर्य चन्द्रादि का वर्णन

धातकीखण्ड का व्यास 4 लाख योजन का है। इसमें 12 सूर्य एवं 12 चन्द्रमा हैं। 510 योजन प्रमाण वाले यहाँ पर 6 गमन क्षेत्र हैं। एक-एक गमन क्षेत्रों में पूर्ववत् 2-2 सूर्य-चन्द्र परिभ्रमण करते हैं।

जम्बूद्वीप के समान ही इन एक-एक गमन क्षेत्रों में सूर्य की 184-184 गलियाँ एवं चन्द्र की 15-15 गलियाँ हैं। गमना-गमन आदि क्रम सब यहीं के समान हैं।

लवण समुद्र की वेदी से (तट से) 33332 योजन जाकर प्रथम सूर्य की प्रथम परिधि है। सूर्य बिम्ब का प्रमाण योजन छोड़कर आगे–66665 योजन जाकर दूसरे सूर्य की प्रथम परिधि है। यहाँ पर सूर्य बिम्ब का प्रमाण योजन छोड़कर पुनः आगे 66665 योजन पर तृतीय सूर्य की प्रथम परिधि है।

इस क्रम से छठे सूर्य के बिम्ब के बाद 33332 योजन पर धातकीखण्ड की अन्तिम तट वेदी है। यथा–

33332 + + 66665 + + 66665 + + 66665 + + 66665 + + 66665 + + 33332 = 400000 का धातकीखण्ड द्वीप है। यहाँ की भी गलियों की परिधियाँ बहुत ही बड़ी-बड़ी होती गई हैं। अतः यहाँ पर सूर्य की गति बहुत ही तीव्र हो गई है। यहाँ के 3 वलय के 6 सूर्य-चन्द्र सुमेरू की ही प्रदक्षिणा देते हुये भ्रमण करते हैं। बाकी के 3 वलय के सूर्य-चन्द्र धातकीखण्ड सम्बन्धी दो मेरू सहित सुमेरू की अर्थात् तीनों मेरूओं की प्रदक्षिणा करते हुये भ्रमण करते हैं।

कालोदधि के सूर्य, चन्द्रादिकों का वर्णन

कालोदधि समुद्र का व्यास 8 लाख योजन का है। यहाँ पर 42 सूर्य एवं 42 चन्द्रमा हैं। यहाँ पर 510 योजन प्रमाण वाले 21 गमन क्षेत्र अर्थात् वलय हैं। यहाँ पर भी प्रत्येक वलय में 2-2 सूर्य एवं चन्द्र तथा उनकी 184-184 एवं 15-15 गलियाँ हैं। मात्र परिधियाँ बहुत ही बड़ी-बड़ी होने से गमन अतिशीघ्र रूप होता है।

धातकी खण्ड की अन्तिम तट वेदी से 19047 योजन जाकर प्रथम सूर्य का प्रथम वलय है। वहाँ योजन प्रमाण सूर्य बिम्ब के प्रमाण को छोड़कर आगे 38094 योजन जाकर द्वितीय सूर्य की प्रथम गली है। अनंतर इतने-इतने अन्तराल से ही 21 वलय पूर्ण होने पर 190478 योजन जाकर कालोदधि समुद्र की अन्तिम तट वेदी है। अतः 21 वलयों के अन्तरालों का (प्रत्येक 38094 योजन प्रमाण वाली) तथा वेदी से प्रथम वलय एवं अन्तिम वलय से अन्तिम वेदी का 19047 योजन प्रमाण एवं 21 बार सूर्य बिम्ब के योजन प्रमाण का जोड़ करने से 8,00,000 योजन प्रमाण विस्तार वाला कालोदधि समुद्र है।

पुष्करार्ध द्वीप के सूर्य, चन्द्र

पुष्करवर द्वीप 16 लाख योजन का है। उसमें बीच में वलयाकार (चूड़ी के आकार वाला) मानुषोत्तर पर्वत है। मानुषोत्तर पर्वत के इस तरफ ही मनुष्यों के रहने के क्षेत्र हैं। इस आधे पुष्करवर द्वीप में भी धातकीखण्ड के समान दक्षिण और

उत्तर दिशा में दो इष्वाकार पर्वत हैं। जो एक ओर से कालोदधि समुद्र को छूते हैं एवं दूसरी ओर मानुषोत्तर पर्वत का स्पर्श करते हैं। यहाँ पर भी पूर्व एवं पश्चिम में 1-1 मेरू होने से 2 मेरू हैं तथा भरत क्षेत्रादि क्षेत्र एवं हिमवन् पर्वत आदि पर्वतों की भी संख्या दूनी-दूनी है।

मध्य में मानुषोत्तर पर्वत के निमित्त से इस द्वीप के दो भाग हो जाने से ही इस आधे भाग को पुष्करार्ध कहते हैं।

इस पुष्करार्ध द्वीप में 72 सूर्य एवं 72 चन्द्रमा हैं। इनके 510 योजन प्रमाण वाले 36 गमन क्षेत्र (वलय) हैं। प्रत्येक में 2-2 सूर्य एवं 2-2 चन्द्र हैं। एक-एक वलय में 184-184 सूर्य की गलियाँ तथा 15-15 चन्द्र की गलियाँ हैं। 18 वलयों में सूर्य-चन्द्र आदि 3 मेरूओं (1 जम्बूद्वीप सम्बन्धी एवं 2 धातकीखण्ड सम्बन्धी) की ही प्रदक्षिणा करते हैं। शेष 18 वलय के सूर्य, चन्द्रादि 2 पुष्करार्ध के मेरू सहित पाँचों ही मेरूओं की सतत प्रदक्षिणा करते रहते हैं।

विशेष–जम्बूद्वीप के बीचोंबीच में 1 सुमेरू पर्वत है। धातकीखण्ड में विजय, अचल नाम के दो मेरू हैं और वहाँ 12 सूर्य, 12 चन्द्रमा हैं, उनके 6 वलय हैं। जिनमें 3 वलय, दोनों मेरूवों के इधर और 3 वलय मेरूवों के उधर हैं। इसलिये– जम्बूद्वीप के 2 सूर्य एवं 2 चन्द्र, लवण समुद्र के 4 सूर्य, 4 चन्द्र तथा धातकीखण्ड के मेरूवों के इधर के 3 वलय के 6 सूर्य व 6 चन्द्र सपरिवार जम्बूद्वीपस्थ 1 सुमेरू पर्वत की ही प्रदक्षिणा देते हैं। आगे पुष्करार्ध में मंदर और विद्युन्माली नाम के दो मेरू हैं। कालोदधि समुद्र में 42 सूर्य 42 चन्द्रमा हैं उनके 21 गमन क्षेत्र हैं तथा पुष्करार्ध में 72 सूर्य एवं 72 चन्द्रमा हैं। उनके 36 वलय में 18 वलय तो दोनों मेरूवों के इधर एवं 18 वलय मेरूवों के उधर हैं। अतः धातकीखण्ड के 3 वलय के 6 सूर्य, 6 चन्द्र, कालोदधि के 42 सूर्य, 42 चन्द्र एवं पुष्करार्ध के मेरु के इधर के 18 वलय के 36 सूर्य–36 चन्द्र सपरिवार जम्बूद्वीपस्थ 1 सुमेरू पर्वत और धातकीखंड के दो मेरू इस प्रकार तीन मेरू की ही प्रदक्षिणा देते हैं। किन्तु पुष्करार्ध के 2 मेरूवों के उधर के 18 वलय के 36 सूर्य, 36 चन्द्र सपरिवार पाँचों ही मेरूवों की प्रदक्षिणा करते हैं। इस प्रकार पाँच मेरूवों की प्रदक्षिणा का क्रम है।

कालोदधि समुद्र की वेदी से सूर्य का अन्तराल 11110 योजन है तथा प्रथम वलय के सूर्य से द्वितीय वलय के सूर्य का अन्तराल 22221 योजन का है।

इसी प्रकार प्रत्येक वलय के सूर्य से अगले वलय के सूर्य का अंतराल 22221 योजन है तथा अन्तिम वलय के सूर्य से मानुषोत्तर पर्वत का अंतराल 11110 योजन का है। अतएव पैंतीस बार 22221 की संख्या को, 2 बार 11110 संख्या को एवं 36 बार सूर्य बिम्ब प्रमाण की संख्या को रखकर जोड़ देने से 8 लाख प्रमाण पुष्करार्ध द्वीप का प्रमाण आ जाता है। यथा–

22221 × 35 = 777750 एवं 11110 × 2 = 22221

तथा × 36 = 28 कुल 800000 हुआ।

विशेष–पुष्करार्ध द्वीप की बाह्य परिधि–1,42,30,249 योजन की है। इससे कुछ कम वहाँ के सूर्य के अन्तिम गली की परिधि होगी। अतः इसमें 60 मुहूर्त का भाग देने से 2,70,504 योजन प्रमाण हुआ। वहाँ के सूर्य के एक मुहूर्त की गति का यह प्रमाण है।

अर्थात् जब सूर्य जम्बूद्वीप में प्रथम गली में है तब उसका 1 मुहूर्त में गमन करने का प्रमाण 210,05,933 मील होता है तथा पुष्करार्ध के अंतिम वलय की अन्तिम गली में वहाँ के सूर्य का 1 मुहूर्त में गमन 94,86,93,266 मील के लगभग है।

मनुष्य क्षेत्र का वर्णन

मानुषोत्तर पर्वत के इधर-उधर 45 लक्ष योजन तक के क्षेत्र में ही मनुष्य रहते हैं। अर्थात्–

जम्बूद्वीप का विस्तार	1 लक्ष योजन
लवण समुद्र के दोनों ओर का विस्तार	4 लक्ष योजन
धातकी खण्ड के दोनों ओर का विस्तार	8 लक्ष योजन
कालोदधि समुद्र के दोनों ओर का विस्तार	16 लक्ष योजन
पुष्करार्ध द्वीप के दोनों ओर का विस्तार	16 लक्ष योजन

जम्बूद्वीप को वेष्टित करके आगे-आगे द्वीप समुद्र होने से दूसरी तरफ से भी लवण समुद्र आदि के प्रमाण को लेने से 1 + 2 + 4 + 8 + 8 + 8 + 8 + 4 + 2 = 4500000 योजन होते हैं।

मानुषोत्तर पर्वत के बाहर मनुष्य नहीं जा सकते हैं। आगे-आगे असंख्यात द्वीप, समुद्रों तक अर्थात् अन्तिम स्वयंभूरमण समुद्र पर्यन्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच पाये जाते हैं। वहाँ तक असंख्यातों व्यन्तर देवों के आवास भी बने हुये हैं। सभी देवगण वहाँ गमनागमन कर सकते हैं।

मध्यलोक 1 राजू प्रमाण है। मेरू के मध्य भाग से लेकर स्वयंभूरमण समुद्र तक आधा राजू होता है। अर्थात् आधे का आधा (1/4) राजू स्वयंभूरमण समुद्र की अभ्यन्तर वेदी तक होता है और 1/4 राजू में स्वयंभूरमण द्वीप व सभी असंख्यात द्वीप समुद्र आ जाते हैं।

अढ़ाई द्वीप के चन्द्र (परिवार सहित) (चार्ट नं.-५)

द्वीप, समुद्रों के नाम	चन्द्र	सूर्य	ग्रह	नक्षत्र	तारे
जम्बूद्वीप में	2	2	176	56	66975 × 2 कोड़ाकोड़ी
लवण समुद्र में	4	4	352	112	66975 × 4 कोड़ाकोड़ी
धातकीखण्ड में	12	12	1056	336	66975 × 12 कोड़ाकोड़ी
कालोदधि समुद्र में	42	42	3696	1176	66975 × 42 कोड़ाकोड़ी
पुष्करार्ध में	72	72	6336	2016	66975 × 72 कोड़ाकोड़ी
कुल योग	132	132	11616	3696	8840700 कोड़ाकोड़ी

जम्बूद्वीपादि के नाम एवं उनमें क्षेत्रादि व्यवस्था

जम्बूद्वीप में सुमेरू पर्वत के उत्तर दिशा में उत्तर-कुरू में 1 जम्बू (जामुन) का वृक्ष है। उसी प्रकार धातकीखण्ड में 1 धातकी (आंवला) का वृक्ष है। तथैव पुष्करार्ध में पुष्कर वृक्ष है। ये विशाल पृथ्वीकायिक वृक्ष हैं। इन्हीं वृक्षों के नाम से उपलक्षित नाम वाले ये द्वीप हैं।

जिस प्रकार जम्बूद्वीप में क्षेत्र, नदियाँ और पर्वत हैं उसी प्रकार से धातकी खण्ड में, पुष्करार्ध में उन्हीं-उन्हीं नाम के दूने-दूने क्षेत्र, पर्वत, नदियाँ एवं मेरू आदि हैं।

विदेह क्षेत्र का विशेष वर्णन

जम्बूद्वीप के बीच में सुमेरू पर्वत है। इसके दक्षिण में निषध पर्वत और उत्तर में नील पर्वत है। यह मेरू विदेह क्षेत्र के ठीक बीच में है। निषध पर्वत से सीतोदा और नील पर्वत से सीता नदी निकली है। सीतोदा नदी पश्चिम समुद्र में और सीता नदी पूर्व समुद्र में प्रवेश करती है। इसलिये इनसे विदेह के 4 भाग हो गये हैं। दो भाग मेरू के एक ओर, दो भाग मेरू के दूसरी ओर। एक-एक विदेह में 4-4 वक्षार पर्वत और 3-3 विभंग नदियाँ होने से 1-1 विदेह के आठ-आठ भाग हो गये हैं।

इन चार विदेहों के बत्तीस भाग (विदेह) हो गये हैं। ये बत्तीस विदेह क्षेत्र जम्बूद्वीप के 1 मेरू सम्बन्धी हैं। इस प्रकार ढ़ाई द्वीप के 5 मेरू सम्बन्धी 32 × 5 = 160 विदेह क्षेत्र होते हैं।

१७० कर्मभूमियों का वर्णन

इस प्रकार 160 विदेह क्षेत्रों में 1-1 विजयार्ध एवं गंगा-सिन्धु तथा रक्ता-रक्तोदा नाम की 2-2 नदियों से 6-6 खण्ड होते हैं जिनमें मध्य का आर्य खण्ड एवं शेष पाँचों म्लेच्छ खण्ड कहलाते हैं।

पाँच मेरू सम्बन्धी 5 भरत, 5 ऐरावत और 5 महाविदेहों के 160 विदेह- 5 + 5 + 160 = 170 हुये। ये 170 ही कर्मभूमियाँ हैं।

एक राजू चौड़े इस मध्यलोक में असंख्यातों द्वीप, समुद्र हैं। उनके अन्तर्गत ढ़ाई द्वीप की 170 कर्मभूमियों में ही मनुष्य तपश्चरणादि के द्वारा कर्मों का नाश करके मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। इसलिये ये क्षेत्र कर्मभूमि कहलाते हैं।

इन क्षेत्रों में काल परिवर्तन का क्रम

भरत एवं ऐरावत क्षेत्रों में पहले काल से लेकर छठे काल तक क्रम से परिवर्तन होता रहता है। वह दो भेद रूप है-अवसर्पिणी एवं उत्सर्पिणी।

अवसर्पिणी-1. सुषमा-सुषमा, 2. सुषमा, 3. सुषमा-दुषमा, 4. दुषमा-सुषमा, 5. दुषमा, 6. अति दुषमा।

पुनः विपरीत क्रम से ही 6 कालरूप परिवर्तन होता रहता है।

उत्सर्पिणी-6. अति दुषमा, 5. दुषमा, 4. दुषमा-सुषमा, 3. सुषमा-दुषमा, 2. सुषमा, 1. सुषमा-सुषमा।

प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय काल में क्रमशः उत्तम, मध्यम तथा जघन्य भोगभूमि की व्यवस्था रहती है। चतुर्थ काल से कर्मभूमि शुरू होती है। चतुर्थ काल में तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदि श्लाका पुरुषों का जन्म एवं सुख की बहुलता रहती है। पुण्यादि कार्य विशेष होते हैं एवं मनुष्य उत्तम संहनन आदि सामग्री प्राप्त कर कर्मों का नाश करते रहते हैं। पंचमकाल में उत्तम संहनन आदि पूर्ण सामग्री का अभाव एवं केवली, श्रुतकेवली का अभाव होने से पंचम काल के जन्म लेने वाले मनुष्य इसी भव से मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकते हैं।

160 विदेह क्षेत्रों में सदैव चतुर्थकाल के प्रारम्भवत् सब व्यवस्था रहती है।

भरत, ऐरावत क्षेत्रों में जो विजयार्ध पर्वत हैं उनमें जो विद्याधरों की नगरियाँ हैं एवं भरत, ऐरावत क्षेत्रों में जो 5-5 म्लेच्छ खण्ड हैं उनमें चतुर्थ काल के आदि से अन्त तक जैसा परिवर्तन होता है वैसा ही परिवर्तन होता रहता है।

३० भोगभूमियाँ

सुमेरू पर्वत के ठीक उत्तर में उत्तरकुरू और दक्षिण में देवकुरू हैं। ये उत्तर-कुरू, देवकुरू उत्तम भोगभूमि हैं। हरि क्षेत्र एवं रम्यक क्षेत्र में मध्यम भोगभूमि की व्यवस्था है तथा हैरण्यवत, हैमवत क्षेत्र में जघन्य भोगभूमि है।

इस प्रकार जम्बूद्वीप की 1 मेरू सम्बन्धी 6 भोगभूमियाँ हैं।

इसी प्रकार धातकीखण्ड की 2 मेरू सम्बन्धी 12 तथा पुष्करार्ध की 2 मेरू सम्बन्धी 12, इस प्रकार–ढ़ाई द्वीप की पाँचों मेरू सम्बन्धी–6 + 12 + 12 = 30 भोगभूमियाँ हैं।

जहाँ पर 10 प्रकार के कल्पवृक्षों के द्वारा उत्तम-उत्तम भोगोपभोग सामग्री प्राप्त होती है, उसे भोगभूमि कहते हैं।

जम्बूद्वीप के अकृत्रिम चैत्यालय

जम्बूद्वीप में 78 अकृत्रिम जिनचैत्यालय हैं यथा–सुमेरू पर्वत सम्बन्धी 16 चैत्यालय हैं।

सुमेरू पर्वत की विदिशा में 4 गजदंत के 4 चैत्यालय हैं।

हिमवदादि षट्कुलाचल के 6 चैत्यालय हैं।

विदेह के 16 वक्षार पर्वतों के 16 चैत्यालय हैं।

32 विदेहस्थ विजयार्ध के 32 चैत्यालय हैं।

भरत, ऐरावत के 2 विजयार्ध के 2 चैत्यालय हैं।

देवकुरू, उत्तरकुरू के जम्बू, शाल्मलि 2 वृक्षों के 2 चैत्यालय हैं।

इस प्रकार 16 + 4 + 6 + 16 + 32 + 2 + 2 = 78 जिनचैत्यालय जम्बूद्वीप सम्बन्धी हैं।

मध्यलोक के सम्पूर्ण अकृत्रिम चैत्यालय

जम्बूद्वीप के समान ही धातकीखण्ड एवं पुष्करार्ध में 2-2 मेरू के निमित्त से सारी रचना दूनी-दूनी होने से चैत्यालय भी दूने-दूने हैं। धातकीखण्ड एवं पुष्करार्ध में 2-2 इष्वाकार पर्वत पर 2-2 चैत्यालय हैं। मानुषोत्तर पर्वत पर चारों ही दिशाओं के 4 चैत्यालय हैं। आठवें नंदीश्वर द्वीप की चारों दिशाओं के 52 चैत्यालय हैं। 11वें कुण्डलवर द्वीप में स्थित कुण्डलवर पर्वत पर 4 दिशा सम्बन्धी 4 चैत्यालय हैं।

तेरहवें रुचकवर द्वीप में स्थित रुचकवर पर्वत पर चार दिशा सम्बन्धी 4 चैत्यालय हैं। इस प्रकार 458 चैत्यालय होते हैं। यथा–

जम्बूद्वीप में	78 चैत्यालय
धातकीखण्ड में	156 चैत्यालय
पुष्करार्ध में	156 चैत्यालय
धातकी खण्ड एवं पुष्करार्ध में स्थित इष्वाकार पर्वतों पर	4 चैत्यालय
मानुषोत्तर पर्वत पर	4 चैत्यालय
नंदीश्वर द्वीप में	52 चैत्यालय
कुण्डलगिरि में	4 चैत्यालय
रुचकवरगिरि में	4 चैत्यालय

78 + 156 + 156 + 4 + 4 + 52 + 4 + 4 = 458 चैत्यालय हैं। इन मध्यलोक सम्बन्धी 458 चैत्यालयों को एवं उनमें स्थित सर्व जिनप्रतिमाओं को मैं मन-वचन-काय से नमस्कार करता हूँ।

ढाई द्वीप के बाहर स्थित ज्योतिष्क देवों का वर्णन

मानुषोत्तर पर्वत के बाहर जो असंख्यात द्वीप और समुद्र हैं उनमें न तो मनुष्य उत्पन्न ही होते हैं और न वहाँ जा ही सकते हैं।

मानुषोत्तर पर्वत से परे (बाहर) आधा पुष्करद्वीप 8 लाख योजन का है। इस पुष्करार्ध में 1264 सूर्य एवं इतने ही (1264) चन्द्रमा हैं। अर्थात्–मानुषोत्तर पर्वत से आगे 50000 योजन की दूरी पर प्रथम वलय है। इस प्रथम वलय की सूची[1] का विस्तार 4600000 योजन है। उसकी परिधि 1,45,46,477 योजन प्रमाण है।

इस प्रथम वलय में (अभ्यन्तर पुष्करार्ध से 72 से दुगुने) 144 सूर्य एवं 144 चन्द्रमा हैं। इस प्रथम वलय की परिधि में 144 का भाग देने से सूर्य से सूर्य का अन्तर प्राप्त होता है। यथा–14546477 ÷ 144 = 101017 योजन है। इसमें से सूर्य बिम्ब और चन्द्र बिम्ब के प्रमाण को कम कर देने पर उनका बिम्ब रहित अन्तर इस प्रकार प्राप्त होता है– × 144 = , 101017 – = 101016 योजन एक सूर्य बिम्ब से दूसरे सूर्य बिम्ब का अन्तर है।

इस प्रकार पुष्करार्ध में 8 वलय हैं। प्रथम वलय से 1 लाख योजन जाकर दूसरा वलय है। इस दूसरे वलय में प्रथम वलय के 144 से 4 सूर्य अधिक हैं। इसी प्रकार आगे के 6 वलयों में 4-4 सूर्य एवं 4-4 चन्द्र अधिक-अधिक होते गये हैं। जिस प्रकार प्रथम वलय से 1 लाख योजन दूरी पर द्वितीय वलय है। उसी प्रकार 1-1 लाख योजन दूरी पर आगे-आगे के वलय हैं। इस प्रकार क्रम से सूर्य, चन्द्रों की संख्या भी बढ़ती गई है। जिस प्रकार प्रथम वलय मानुषोत्तर पर्वत से 50 हजार योजन पर है उसी प्रकार अंतिम वलय से पुष्करार्ध की अंतिम वेदी 50 हजार योजन पर है बाकी मध्य के सभी वलय 1-1 लाख योजन के अन्तर से हैं।

प्रथम वलय में 144, दूसरे में 148, तीसरे में 152 इस प्रकार 4-4 बढ़ते हुये अंतिम वलय में 172 सूर्य एवं 172 चन्द्रमा हैं। इस प्रकार पुष्करार्ध के आठों वलयों के कुल मिलाकर 1264 सूर्य एवं 1264 चन्द्रमा हैं। ये गमन नहीं करते हैं, अपनी-अपनी जगह पर ही स्थित हैं। इसलिये वहाँ दिन-रात का भेद नहीं दिखाई देता है।

1. पुष्करार्ध के प्रथम वलय के इस ओर से बीच में जम्बूद्वीप आदि को करके उस ओर तक के पूरे माप को सूची व्यास कहते हैं। यथा–मानुषोत्तर पर्वत के इस ओर से उस ओर तक 45 लाख एवं 50 हजार इधर व 50 हजार उधर का मिलाकर 46 लाख होता है।

पुष्करवर समुद्र के सूर्य चन्द्रादिक

पुष्करवर द्वीप को घेरे हुये पुष्करवर समुद्र 32 लाख योजन का है। इसमें प्रथम वलय पुष्करवर द्वीप की वेदी से 50000 योजन आगे है। इस प्रथम वलय से 1-1 लाख योजन की दूरी पर आगे-आगे के वलय हैं। अंतिम वलय से 50000 योजन जाकर समुद्र की अंतिम तट वेदी है।

इस पुष्करवर समुद्र में 32 वलय हैं। प्रथम वलय में 2528 सूर्य एवं इतने ही चन्द्रमा हैं अर्थात् बाह्य पुष्कर द्वीप के कुल मिलाकर 1264 सूर्य थे उसके दुगुने 2528 होते हैं। अगले समुद्र के प्रथम वलय में दूने होते हैं। पुनः प्रत्येक वलयों में 4-4 सूर्य-चन्द्र बढ़ते गये हैं। इस प्रकार बढ़ते-बढ़ते अंतिम बत्तीसवें वलय में 2652 सूर्य एवं 2652 चन्द्रमा होते हैं। पुष्करवर समुद्र के 32 वलयों के सभी सूर्यों का जोड़ 82880 है एवं चन्द्र भी इतने ही हैं।

असंख्यात द्वीप समुद्रों में सूर्य चन्द्रादि

इसी प्रकार आगे के द्वीप में 82880 से दूने सूर्य, चन्द्र प्रथम वलय में हैं और आगे के वलयों में 4-4 से बढ़ते जाते हैं। वलय भी 32 से दूने 64 हैं।

पुनः इस द्वीप में 64 वलयों के सूर्यों की जो संख्या है उससे दुगुने अगले समुद्र के प्रथम वलय में होंगे। पुनः 4-4 की वृद्धि से बढ़ते हुये अंतिम वलय तक जायेंगे। वलय भी पूर्व द्वीप से दुगुने ही होंगे। इस प्रकार यही क्रम आगे के असंख्यात द्वीप समुद्रों में सर्वत्र अंतिम स्वयंभूरमण द्वीप व समुद्र तक जानना चाहिये।

मानुषोत्तर पर्वत से आगे के (स्वयंभूरमण समुद्र तक) सभी ज्योतिर्वासी देवों के विमान अपने-अपने स्थानों पर ही स्थिर हैं, गमन नहीं करते हैं।

इस प्रकार असंख्यात द्वीप, समुद्रों में असंख्यात द्वीप, समुद्रों की संख्या से भी अत्यधिक असंख्यातों सूर्य, चन्द्र हैं एवं उनके परिवार देव–ग्रह, नक्षत्र, तारागण आदि भी पूर्ववत् एक चन्द्र की परिवार संख्या के समान ही असंख्यातों हैं। इन सभी ज्योतिर्वासी देवों के विमानों में प्रत्येक में 1-1 जिनमंदिर है। उन असंख्यात जिनमंदिरों एवं उनमें स्थित सभी जिन प्रतिमाओं को मेरा मन, वचन, काय से नमस्कार हो।

ज्योतिर्वासी देवों में उत्पत्ति के कारण

देवगति के 4 भेद हैं–भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिर्वासी एवं वैमानिक। सम्यग्दृष्टि जीव वैमानिक देवों में ही उत्पन्न होते हैं। भवनत्रिक (भवन, व्यन्तर, ज्योतिष्क देव) में उत्पन्न नहीं होते हैं क्योंकि ये जिनमत के विपरीत धर्म को पालने वाले हैं, उन्मार्गचारी हैं, निदानपूर्वक मरने वाले हैं, अग्निपात, झंझावात आदि से मरने वाले हैं, अकाम निर्जरा करने वाले हैं, पंचाग्नि आदि कुतप करने वाले हैं या सदोष चारित्र पालने वाले हैं एवं सम्यग्दर्शन से रहित ऐसे जीव इन ज्योतिष्क आदि देवों में उत्पन्न होते हैं।

ये देव भी भगवान के पंचकल्याणक आदि विशेष उत्सवों के देखने से या अन्य देवों की विशेष ऋद्धि (विभूति) आदि देखने से या जिनबिम्बदर्शन आदि कारणों से सम्यग्दर्शन को प्राप्त कर सकते हैं तथा अकृत्रिम चैत्यालयों की पूजा एवं भगवान के पंचकल्याणक आदि में आकर महान पुण्य का संचय भी कर सकते हैं। अनेक प्रकार की अणिमा, महिमा आदि ऋद्धियों से युक्त इच्छानुसार अनेक भोगों का अनुभव करते हुये यत्र-तत्र क्रीड़ा आदि के लिये परिभ्रमण करते रहते हैं। ये देव तीर्थंकर देवों के पंचकल्याणक उत्सव में या क्रीड़ा आदि के लिये अपने मूल शरीर से कहीं भी नहीं जाते हैं। विक्रिया के द्वारा दूसरा शरीर बनाकर ही सर्वत्र आते-जाते हैं।

यदि कदाचित् वहाँ पर सम्यक्त्व को नहीं प्राप्त कर पाते हैं तो मिथ्यात्व के निमित्त से मरण के 6 महीने पहले से ही अत्यन्त दुःखी होने से आर्तध्यानपूर्वक मरण करके मनुष्य गति में या पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में जन्म लेते हैं। यदि अत्यधिक संक्लेश परिणाम से मरते हैं तो एकेन्द्रिय–पृथ्वी, जल, वनस्पतिकायिक आदि में भी जन्म ले लेते हैं।

किन्तु यदि सम्यग्दर्शन को प्राप्त कर मरते हैं तो शुभ परिणाम से मरकर मनुष्य भव में आकर दीक्षा आदि उत्तम पुरुषार्थ के द्वारा कर्मों का नाश कर मोक्ष को भी प्राप्त कर लेते हैं।

देवगति में संयम को धारण नहीं कर सकते हैं एवं संयम के बिना कर्मों का नाश नहीं होता है। अतः मनुष्य पर्याय को पाकर संयम को धारण करके कर्मों के नाश करने का प्रयत्न करना चाहिये। इस मनुष्य जीवन का सार संयम ही है।

योजन एवं कोस बनाने की विधि

पुद्गल के सबसे छोटे अविभागी टुकड़े को परमाणु कहते हैं।

ऐसे अनंतानंत परमाणुओं का	1 अवसन्नासन्न
8 अवसन्नासन्न का	1 सन्नासन्न
8 सन्नासन्न का	1 त्रुटिरेणु
8 त्रुटिरेणु का	1 त्रसरेणु
8 त्रसरेणु का	1 रथरेणु
8 रथरेणु का	उत्तम भोगभूमियों के बाल का 1 अग्र भाग
उत्तम भोगभूमियों के बाल के 8 अग्रभागों का	मध्यम भोगभूमियों के बाल का 1 अग्र भाग
मध्यम भोगभूमियों के बाल के 8 अग्र भागों का	जघन्य भोगभूमियों के बाल का 1 अग्र भाग
जघन्य भोगभूमियों के बाल का 8 अग्र भागों का	कर्मभूमियों के बाल का 1 अग्र भाग
कर्मभूमियों के बाल के 8 अग्र भागों का	1 लीख
8 लीख का	1 जूँ
8 जूँ का	1 जव (पड़ी जव)
8 जव का	1 अंगुल

इसे ही उत्सेधांगुल कहते हैं। इस उत्सेधांगुल का 500 गुणा प्रमाणांगुल होता है।

6 उत्सेध अंगुल का	1 पाद
2 पाद का	1 बालिस्त
2 बालिस्त का	1 हाथ
2 हाथ का	1 रिक्कू
2 रिक्कू का	1 धनुष
2000 धनुषों का	1 कोस

4 कोस का 1 लघु योजन
500 लघु योजनों का 1 महायोजन

2000 धनुष का 1 कोस है। अतः 1 धनुष में 4 हाथ होने से 8000 हाथ का 1 कोस हुआ एवं 1 कोस में 2 मील मानने से 4000 हाथ का 1 मील होता है।

एक महायोजन में 2000 कोस होते हैं। एक कोस में 2 मील मानने से 1 महायोजन में 4000 मील हो जाते हैं। अतः 4000 मील के हाथ बनाने के लिए 1 मील सम्बन्धी 4000 हाथ से गुणा करने पर 4000 × 4000 = 1,6000000 अर्थात् एक महायोजन में 1 करोड़ साठ लाख हाथ हुये।

वर्तमान रैखिक माप में 1760 गज का 1 मील मानते हैं। यदि 1 गज में 2 हाथ मानें तो 1760 × 2 = 3520 हाथ का एक मील हुआ। पुनः उपर्युक्त 1 महायोजन के हाथ 16000000 में 3520 हाथ का भाग देने से 16000000 ÷ 3520 = 4545 आये। इस तरह एक महायोजन में वर्तमान माप से 4545 मील हुए।

परन्तु इस पुस्तक में हमने स्थूल रूप से व्यवहार में 1 कोस में 2 मील की प्रसिद्धि के अनुसार सुविधा के लिये सर्वत्र महायोजन के 2000 कोस को 2 मील से गुणा कर एक महायोजन के 4000 मील मानकर उसी से ही गुणा किया है।

जैन सिद्धान्त में 4 कोस का लघु योजन एवं 2000 कोस का महायोजन माना है। ज्योतिर्बिम्ब और उनकी ऊँचाई आदि का वर्णन महायोजन से ही माना है।

भू-भ्रमण का खण्डन

(श्लोकवार्तिक तीसरी अध्याय के प्रथम सूत्र की हिन्दी से)

कोई आधुनिक विद्वान कहते हैं कि जैनियों की मान्यता के अनुसार यह पृथ्वी वलयाकार चपटी गोल नहीं है। किन्तु यह पृथ्वी गेंद या नारंगी के समान गोल आकार की है। यह भूमि स्थिर भी नहीं है। हमेशा ही ऊपर नीचे घूमती रहती है तथा सूर्य, चन्द्र, शनि, शुक्र आदि ग्रह, अश्विनी, भरिणी आदि नक्षत्र-चक्र, मेरू के चारों तरफ प्रदक्षिणारूप अवस्थित है, घूमते नहीं हैं। यह पृथ्वी एक विशेष वायु के निमित्त से ही घूमती है। इस पृथ्वी के घूमने से ही सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि का उदय, अस्त आदि व्यवहार बन जाता है इत्यादि।

दूसरे कोई वादी पृथ्वी का हमेशा अधोगमन ही मानते हैं एवं कोई-कोई आधुनिक पंडित अपनी बुद्धि में यों मान बैठे हैं कि पृथ्वी दिन पर दिन सूर्य के निकट होती चली जा रही है। इसके विरुद्ध कोई-कोई विद्वान प्रतिदिन पृथ्वी को सूर्य से दूरतम होती हुई मान रहे हैं। इसी प्रकार कोई-कोई परिपूर्ण जल भाग से पृथ्वी को उदित हुई मानते हैं।

किन्तु उक्त कल्पनायें प्रमाणों द्वारा सिद्ध नहीं होती हैं। थोड़े ही दिनों में परस्पर एक-दूसरे का विरोध करने वाले विद्वान खड़े हो जाते हैं और पहले-पहले के विज्ञान या ज्योतिष यंत्र के प्रयोग भी युक्तियों द्वारा बिगाड़ दिये जाते हैं। इस प्रकार छोटे-छोटे परिवर्तन तो दिन-रात होते ही रहते हैं। इसका उत्तर जैनाचार्य इस प्रकार देते हैं–

भूगोल का वायु के द्वारा भ्रमण मानने पर तो समुद्र, नदी, सरोवर आदि के जल की जो स्थिति देखी जाती है, उसमें विरोध आता है।

जैसे कि पाषाण के गोले को घूमता हुआ मानने पर अधिक जल ठहर नहीं सकता है। अतः भू अचला ही है। भ्रमण नहीं करती है। पृथ्वी तो सतत घूमती रहे और समुद्र का जल सर्वथा जहाँ का तहाँ स्थिर रहे, यह बन नहीं सकता। अर्थात् गंगा नदी जैसे हरिद्वार से कोलकाता की ओर बहती है, पृथ्वी की गोल होने पर उल्टी भी बह जायेगी। समुद्र और कुओं के जल गिर पड़ेंगे। घूमती हुई वस्तु पर मोटा अधिक जल नहीं ठहर कर गिरेगा ही गिरेगा।

दूसरी बात यह है कि–पृथ्वी स्वयं भारी है। अधःपतन स्वभाव वाले बहुत से जल, बालू, रेत आदि पदार्थ हैं जिनके ऊपर रहने से नारंगी के समान गोल पृथ्वी हमेशा घूमती रहे और यह सब ऊपर ठहरे रहें। पर्वत, समुद्र, शहर, महल आदि जहाँ के तहाँ बने रहें यह बात असंभव है।

यहाँ पुनः कोई भू-भ्रमणवादी कहते हैं कि घूमती हुई इस गोल पृथ्वी पर समुद्र आदि के जल को रोके रहने वाली एक वायु है जिसके निमित्त से समुद्र आदि ये सब जहाँ के तहाँ ही स्थिर बने रहते हैं।

इस पर जैनाचार्यों का उत्तर–जो प्रेरक वायु इस पृथ्वी को सर्वदा घुमा रही है, वह वायु इन समुद्र आदि को रोकने वाली वायु का घात नहीं कर देगी क्या ? वह बलवान प्रेरक वायु तो इस धारक वायु को घुमाकर कहीं की कहीं फेंक देगी।

सर्वत्र ही देखा जाता है कि यदि आकाश में मेघ छाये हैं और हवा जोरों से चलती है, तब उस मेघ को धारण करने वाली वायु को विध्वंस करके मेघ को तितर-बितर कर देती है, वे बेचारे मेघ नष्ट हो जाते हैं, या देशान्तर में प्रयाण कर जाते हैं।

उसी प्रकार अपने बलवान वेग से हमेशा भूगोल को सब तरफ से घुमाती हुई जो प्रेरक वायु है। वह वहाँ पर स्थिर हुये समुद्र, सरोवर आदि को धारने वाली वायु को नष्ट-भ्रष्ट कर ही देगी। अतः बलवान प्रेरक वायु भूगोल को हमेशा घुमाती रहे और जल आदि की धारक वायु वहाँ बनी रहे, यह नितान्त असंम्भव है।

पुनः भू-भ्रमणवादी कहते हैं कि पृथ्वी में आकर्षण शक्ति है। अतएव सभी भारी पदार्थ भूमि के अभिमुख होकर ही गिरते हैं। यदि भूगोल पर से जल गिरेगा तो भी वह पृथ्वी की ओर ही गिरकर वहाँ का वहाँ ही ठहरा रहेगा। अतः वह समुद्र आदि अपने-अपने स्थान पर ही स्थिर रहेंगे।

इस पर जैनाचार्य कहते हैं कि–आपका कथन ठीक नहीं है। भारी पदार्थों का तो नीचे की ओर गिरना ही दृष्टिगोचर हो रहा है। अर्थात्–पृथ्वी में 1 हाथ का लम्बा चौड़ा गड्ढा करके उस मिट्टी को गड्ढे की एक ओर ढलाऊ ऊँची कर दीजिये। उस पर गेंद रख दीजिये, वह गेंद नीचे की ओर गड्ढे में ही ढुलक जायेगी। जबकि ऊपर भाग में मिट्टी अधिक है तो विशेष आकर्षण शक्ति के होने से गेंद को ऊपर देश में ही चिपकी रहना चाहिये था, परन्तु ऐसा नहीं होता है। अतः कहना पड़ता है कि भले ही पृथ्वी में आकर्षण शक्ति होवे, किन्तु उस आकर्षण शक्ति की सामर्थ्य से समुद्र के जलादिकों का घूमती हुई पृथ्वी से तिरछा या दूसरी ओर गिरना नहीं रुक सकता है।

जैसे कि प्रत्यक्ष में नदी, नहर आदि का जल ढलाऊ पृथ्वी की ओर ही यत्र-तत्र किधर भी बहता हुआ देखा जाता है और लोहे के गोलक, फल आदि पदार्थ स्वस्थान से च्युत होने पर (गिरने पर) नीचे की ओर ही गिरते हैं।

इस प्रकार जो लोग आर्यभट्ट या इटली, यूरोप आदि देशों के वासी विद्वानों की पुस्तकों के अनुसार पृथ्वी का भ्रमण स्वीकार करते हैं और उदाहरण देते हैं कि–जैसे अपरिचित स्थान में नौका में बैठा हुआ कोई व्यक्ति नदी पार कर रहा है। उसे नौका तो स्थिर लग रही है और तीरवर्ती वृक्ष, मकान आदि चलते हुए दिख रहे हैं परन्तु यह भ्रम मात्र है, तद्वत् पृथ्वी की स्थिरता की कल्पना भी भ्रम मात्र है।

इस पर जैनाचार्य कहते हैं कि–साधारण मनुष्य को भी थोड़ा सा ही घूम लेने पर आँखों में घूमनी आने लगती है, कभी-कभी खण्ड देश में अत्यल्प भूकम्प आने पर भी शरीर में कंपकपी, मस्तक में भ्रांति होने लग जाती है। तो यदि डाकगाड़ी के वेग से भी अधिक वेगरूप पृथ्वी की चाल मानी जायेगी, तो ऐसी दशा में मस्तक, शरीर, पुराने गृह, कूपजल आदि की क्या व्यवस्था होगी। बुद्धिमान स्वयं इस बात पर विचार कर सकते हैं।

सूर्य-चन्द्र के बिम्ब की सही संख्या का स्पष्टीकरण

सर्वत्र ज्योतिर्लोक का प्रतिपादन करने वाले शास्त्र तिलोयपण्णत्ति, त्रिलोकसार, लोकविभाग, श्लोकवार्तिक, राजवार्तिक आदि ग्रन्थों में सूर्य के विमान योजन व्यास वाले एवं इससे आधे योजन की मोटाई के हैं और चन्द्र विमान योजन व्यास वाले एवं योजन की मोटाई वाले हैं।

परन्तु राजवार्तिक ग्रन्थ जो कि ज्ञानपीठ से प्रकाशित है उसके हिन्दी टीकाकार प्रोफेसर महेन्द्र कुमार जी ने उसमें हिन्दी में ऐसा लिख दिया है कि–सूर्य के विमान की लम्बाई 48 योजन है तथा चौड़ाई 24 योजन है। उसी प्रकार चन्द्र के विमान की लम्बाई 56 योजन है और चौड़ाई 28 योजन है। यह नितान्त गलत है।

राजवार्तिक की मूल संस्कृत में चतुर्थ अध्याय के 12वें सूत्र में–सूर्य, चन्द्र के विमान का वर्णन करते हुये **''अष्टचत्वारिंशद्योजनैकषष्टिभागविष्कंभायामानि तत्त्रिगुणाधिकपरिधीनि चतुर्विंशतियोजनैकषष्टिभागबाहुल्यानि अर्धगोलकाकृतीनि''** इत्यादि अर्थात्–यह सूर्य के विमान एक योजन के इकसठ भाग में से अड़तालीस भाग प्रमाण आयाम वाले कुछ अधिक त्रिगुणी परिधि वाले एक योजन के इकसठ भाग में से 24 भाग बाहल्य (मोटाई) वाले अर्धगोलक के समान आकार वाले हैं।

व्यास। मोटाई।

उसी प्रकार चन्द्र के विमान के वर्णन में–**''चन्द्रविमानानि षट्पंचाशत् योजनैकषष्टिभागविष्कंभायामानि अष्टाविंशतियोजनैकषष्टिभागबाहुल्यानि''** इत्यादि। अर्थात्–चन्द्र के विमान एक योजन के 61 भाग में से 56 भाग प्रमाण

व्यास वाले एवं एक योजन के 61 भाग में से 28 भाग मोटाई वाले हैं। व्यास। मोटाई।

इसी प्रकार की पंक्ति को रखकर स्वयं ही विद्यानंद स्वामी ने श्लोकवार्तिक में उसका अर्थ योजन मानकर उसे लघु योजन बनाने के लिये पाँच सौ से गुणा करके कुछ अधिक 393 की संख्या निकाली है। देखिये–श्लोकवार्तिक अध्याय तीसरी का सूत्र 13वाँ।

''अष्टचत्वारिंशद्योजनैकषष्टिभागत्वात् प्रमाणयोजनापेक्षयासातिरेक-त्रिनवतिशतत्रयप्रमाणत्वादुत्सेधयोजनापेक्षया दूरोदयत्वाच्च स्वाभिमुखलंबीद्ध-प्रतिभाससिद्धेः''।

अर्थ–बड़े माने गये प्रमाण योजन की अपेक्षा एक योजन के इकसठ भाग प्रमाण सूर्य है। चूँकि चार कोस के छोटे योजन से पाँच सौ गुणा बड़ा योजन होता है। अतः अड़तालीस को पाँच सौ से गुणा करने पर और इकसठ का भाग देने से 393 प्रमाण छोटे योजन से सूर्य होता है।

इस प्रकार 393 योजन का सूर्य होता है और उगते समय यहाँ से हजारों (बड़े) योजनों दूर सूर्य का उदय होने से व्यवहित हो रहे मनुष्यों के भी अपने-अपने अभिमुख आकाश में लटक रहे दैदीप्यमान सूर्य का प्रतिभासपना सिद्ध है। इत्यादि।

इस प्रकार विद्यानंद स्वामी ने **''अष्टचत्वारिंशद्योजनैक षष्टिभाग''** का अर्थ योजन करके इसे महायोजन मानकर 500 से गुणा करके कुछ अधिक 393 प्रमाण लघु योजन बनाया है। इसकी हिन्दी भी पं. माणिकचंद जी ने इसी के अनुसार की है। जबकि प्रो. महेन्द्र कुमार जी इस पंक्ति का अर्थ 48 योजन कर गये हैं। यदि इस संख्या में लघु योजन करके के लिये 500 का गुणा करें तो– 48 × 500 = 2408 संख्या आती है जो कि अमान्य है। तथा यदि में पाँच सौ का गुणा करें तो– × 500 = 393 प्रमाण सही संख्या प्राप्त होती है जो कि श्री विद्यानंद स्वामी ने निकाली है। इसलिये कोई विद्वान् ऐसा कहते हैं कि सूर्यबिम्ब चन्द्रबिम्ब के प्रमाण में जैनाचार्यों के दो मत हैं। यह बात गलत है हिन्दी गलत होने से दो मत नहीं हो सकते हैं। जैनाचार्यों के सभी शास्त्रों में सूर्य-

बिम्ब, चन्द्रबिम्ब आदि के विषय में एक ही मत है, इसमें विसंवाद नहीं है।

ज्योतिर्लोक सम्बन्धी ज्योतिर्वासी देवों का सामान्यतया वर्णन समाप्त हुआ, विशेष जानकारी के लिये इस विषय सम्बन्धी ग्रन्थों का अवलोकन करना चाहिये।

इस लघु पुस्तिका में महान ग्रन्थों का साररूप संकलन मैंने अपने अल्प बुद्धि से मात्र गुरु के प्रसाद से ही प्रस्तुत किया है। पाठकगण! सच्चे देव, शास्त्र, गुरु के प्रति अपनी श्रद्धा को दृढ़ रखते हुये उनकी वाणी पर निःशंक विश्वास करे सम्यक्दृष्टि बनकर स्वर्ग-मोक्ष की प्राप्ति करें, यही शुभ भावना है।

ज्योतिर्लोक जिनालय स्तोत्र

-गणिनी ज्ञानमती

-शंभु छंद-

पृथ्वी से सात शतक नब्बे, योजन ऊपर ज्योतिष सुर हैं।
रवि शशि ग्रह नखत और तारे, ये पाँच भेद ज्योतिष सुर हैं।।
सबके विमान में जिनमंदिर, मणिमय शाश्वत जिनप्रतिमायें।
उनको मैं भक्ती से वंदूँ, ये मोक्षमार्ग को दिखलायें।।1।।

-गीता छंद-

जय जय जिनेश्वर धाम जग में, इंद्र सौ से वंद्य हैं।
जय जय जिनेश्वर मूर्तियां, चिंतामणी शुभ रत्न हैं।।
जय जय गणाधिप साधुगण, नित ध्यावते हैं चित्त में।
जय भव्य पंकज बोध भास्कर, मूर्तियां रवि बिंब में।।2।।

इस भू से इकतिस लाख साठ हजार मील सुगगन में।
तारा विमान सुशोभते नित, घूमते हैं अधर में।।
बत्तीस लाख सुमील ऊपर, रवि विमान सदा रहें।
पैंतीस लाख सुबीस सहस, सुमील पे चंदा रहें।।3।।

नक्षत्र पैंतीस लाख छत्तिस, सहस मीलों पे रहें।।
बुध लाख पैंतिस सहस बावन, मील पे भ्रमते कहें।।
फिर लाख पैंतिस सहस चौंसठ, मील पे ग्रह शुक्र हैं।
पैंतीस लाख सहस छियत्तर, मील पर गुरु बिंब हैं।।4।।

मंगल सुपैंतिस लाख अट्ठासी सहस ही मील पे।
शनि ग्रह सुछत्तीस लाख मीलों के उपरि अति उच्च पे।।
चित्रा धरा से सात सौ, नब्बे से नौ सौ योजनों।
तक एक सौ दस योजनों में, ज्योतिषी जग है भणों।।5।।

शशि सूर्य ग्रह नक्षत्र तारा, के विमानहिं चमकते।
ये अर्ध गोलक सम इन्हीं में, सुर नगर में सुर बसें।।

सबसे बड़े शशि बिंब तारा, के विमान लघू रहें।
त्रय सहस इक सौ सयेंतालिस, मील कुछ अधिकहिं कहें।।6।।

ये बड़े हैं तारा लघु, दो सौ पचासहिं मील के।
इनमें बने हैं महल उनमें, देवगण रहते सबे।
ये देव देवी मनुज सम, अति रूपवान् वहां रहें।
इनके विमानहिं चमकते, दिन रात इनसे बन रहें।।7।।

बस पाँच सौ दस सही, अड़तालिस बटे इकसठ कहे।
योजन महा यह जानिये, इनका गमन का क्षेत्र है।।
इसमें गली इकसौ तिरासी, सूर्य की मानी गईं।
पंद्रह गली हैं चंद्र की, दो पक्ष में विचरें यहीं।।8।।

इन सब विमानहिं मध्य में, उत्तुंग स्वर्णिम कूट हैं।
उन पर जिनेश्वर भवन शाश्वत, शोभते अति पूत हैं।।
सब में जिनेश्वर बिंब इकसौ-आठ इक सौ आठ हैं।
जो देवगण इनको जजें नित, भजें मंगल ठाठ हैं।।9।।

जो नर बहुत विध तप तपें, बहु पुण्य संचय भी करें।
सम्यक्त्वनिधि नहिं पा सकें, वे ही यहां पर अवतरें।।
जिनदर्श करके तृप्त हों, जातिस्मृती वृष श्रवण से।
जिन पंचकल्याणक महोत्सव, देखते अन विभव से।।10।।

सम्यक्त्वलब्धी प्राप्त कर, निज में मगन जिन भक्त हों।
भव पंच परिवर्तन मिटा, कुछ ही भवों में मुक्त हों।।
सम्यक्त्वनिधि अनुपम निधी, जिन भक्त ही करते सुलभ।
सुख भोग कर नर तन धरें फिर, आत्म निधि उनको सुलभ।।11।।

धन धन्य है यह शुभ घड़ी, धन धन्य जीवन सार्थ है।
जिन वंदना का शुभ समय, आया उदय में आज है।।
जिन वंदना से आज मेरे, चित्त की कलियां खिलीं।
मैं 'ज्ञानमति' विकसित करूँ, अब रत्नत्रय निधियां मिलीं।।12।

-दोहा-

ज्योतिर्वासि विमान हैं, पाँच भेद श्रुत सिद्ध।
सबके जिनमंदिर नमूँ, मिले स्वात्मसुख नित्त।।13।।